

वास-भाजनपु भारनालं परिशेषयत मूदान् ; कचचिद्वक-प्रसाधित-
काचपक्षान्, मद्-व्यापूर्णित शोच-नयनान्, सपारस्परिक-कण्ठघर्ह-
पर्व्यटतः, यौवन-सुम्भित-शरीरान्, स्वसौन्दर्य-गर्व-भारेणैव मन्द-
गतीन्, अनवरताऽऽक्षिप्त-कुसुमेषु-शान्तिरिव कुसुमैर्भूयितान्, पसना-
तिरोहिताङ्गच्छतान्, विविध-पटवास-वासितानि च विराभान-

हिन्दी । निश्चयोंतकतः = धारयतः । ताम्रपूदान् = कुन्नुयन् । त्रपु-
लितेषु = “कहाँ दिवे हुये” इति हिन्दी । आरनालम् = काश्चिकम्,
“आनालकचोदीकुन्नावाभिजुतानि च । काश्चिक” इत्यमरः । मूदान् =
काचपक्षान् । कचम् यथा तथा प्रसाधिताः = स्वाभिताः, काचपक्षाः =
कुञ्चितकक्षाः “कचुक” इति हिन्दी, वैखान् । मदेन व्यापूर्णितानि
शोणानि नयनानि देशी तान् । पारस्परिकेण = आप्योन्येन, कण्ठघ-
र्हण = गलधारणेन सहितं यथा स्वात्तयेति पर्यटनक्रियाविरोपनम् । यौव-
नेन = नववयसा, सुम्भितानि = सम्बदानि, शरीरानि देशी तान् । सुम्भि-
तवर्ह इत्यमरः सम्बन्धोपक्रमम्, कचचममुकत्वस्वरस्य भुक्त्यर्थस्य वाचात् ।
स्वभावतो मन्दाया गतेर्निमित्तमुल्लेखते स्वसौन्दर्यस्य गर्वभारेणैवेति । कुसुम-
भूयितेषु तेषु कुसुमानि कुसुमेषुपनुनिरतिवान्मुल्लेखते—अनवरतम् =
सततम्, आक्षिप्ताः = पतितः, कुसुमेषुपाणाः = कामयताः, येन तान् ।
पसनाः = वरवैः, अतिरोहिता, अङ्गच्छत देशी तान् । विविधैः, पटवास-
वासितानि, विराभानेन = अत्यधिककालो देहानिर्जनेन, महामन्त्रिन-

कार कर भगा रहे, और कहीं दिवे हुये लाने के बर्तनों में कात्री परोख रहे
सोइयों को, कहीं तिरछी लुहाँ सँभारे हुए, नरी से लूमते लाल आँखों
वाले, एक दूसरे के गले में हाथ डाले घूमते हुए, नई बचानी वाले, मानों
अपने सौन्दर्य के प्रमग्न के भार से धीरे-धीरे चल रहे, निान्तर चलाए
जा रहे मानों कामकाजकी पुण्यी से अलङ्कृत, कनकों से अङ्गच्छति को
तिरोहित न कर सकने वाले, नाना प्रकार के रथों से सुगन्धित होते हुए

बहून् ? बहून् बहून्, आमाकोना मदी मोना, तथापि न
 तानीयः विमिति कल्पत इव शुभ्यनीव च इदम् ! 'द्वन्नामा
 त्ताज्यो भविष्यति, अपज्जलमानो दिनहृदयनीति न विद्व को
 कपनीव करो, द्वितीयव सम्मुखे, द्वितीयव धान्यवरणे । या म
 तो ! मैव यान्, रक्ष भो ! रक्ष जगद्गर्भर ! अथवा सम्बोधयति-
 तामेवमांश, योऽयमपज्जलमान मोनापति-पद-विद्वन्मनोऽपि
 सिद्धेन योनयेदनिध्यामि मदीप्यामि मे' तिमयीति विजयपुगापीश-
 त्ताज्यभावां प्रतिष्ठाप समायानोऽपि, शिष्यप्रशस्त्र विद्वद्भावि अथ
 इत्यय, अथ गानय, अथ त्ताज्यम्, अथ मरय, अथ यारा-
 दना, अथ भयुमक, अथ योनावादनमिति स्वच्छन्दैरुत्तुङ्गा-
 ऽप्यभिहितानि गमयति । न च य वदति विचारयति; यन्
 पत्नीति द्विपुष्टः यत् इदम् नवेत् स एव तज्जनेन उक्तं कुपन्, ननु
 अप्यारण इति नाकः । जपनीव च मन्दं कल्पताव । इवेन न वास्तवी अ
 उन्द का वात करोता ? इदमेव वल्लभा है, इमानी सेना भी बहुत बड़ी
 है, फिर भी न जाने क्यों इदम् बलिता-सा है, शुभ्य-सा होता है । 'यन्नी
 का द्वार होना कोर अष्टवक्त्र की मात जायगा' इस प्रकार न जाने कौन
 कान में धरे से बहना रहा है, सामने द्विज सा रहा है, दिक् में यही
 धातु भ्रम-को रहा है । नही-नही, ऐसा कभी नही, या पुदा बचाना !
 अथवा ऐसा हो भा सकता है, क्योंकि सेनापति पद की विद्वम्बित करने
 वाला यह अष्टवक्त्र था, यदपि 'मैं शिवाजी से लड़ूँगा, उसे या तो मार
 दूँगा या कैद कर लाऊँगा' इस प्रकार बाजापुर के सुल्तान की सभा
 में प्रतिष्ठा करके आया है और शिवाजी के पराक्रम से भी भली-भाँति
 परिचित है, फिर भी आज नाच है तो आज गाना है, आज गद्गायधान
 स्पर्धित्व है तो आज मर्दिण है, आज वेष्टा है तो आज स्थावेष्टपाटी
 नर्तक है, आज शिक्षावादन है, इस प्रकार स्वच्छन्द उच्छृङ्खल भ्रम-
 चरण से दिन बिता रहा है । यह कभी भी यह नहीं सोचता कि यही

विषये]

निर्भोष-इति कृत्वा गुणपदेषु प्रतिपद्यात्, वनज-वाताहत-नीरसकृत-
 'हार्मिष' यद्धनेन विष्टार्थविप्यामः । इतस्तु छेत्तात्मकत्वमिह चराः
 शिष्यं वार्धक्यं दृष्ट्वा पित्रे शार्प्याय च तं जीवन्मेव वार्धक्यं करिष्य-
 नि । परन्तु गोप्यतमोऽयं विषयो मा भूत् वन्यापि कर्तव्यम् । —
 इति कर्मोक्तिर्यं युवमानीषोत्तरयत् साधनिक-भटानरलो-
 दनः, "धन्या भवन्तो येन गोप्यतमा अपि विषया एव वीथिषु
 विहीर्यन्ते । महाप्राज्ञा पूनाचार्या, जनेषु भवता पूतता सकला
 भवति" इत्यादिमन्त्रेषाऽऽत्मना वक्ष्यन्, स्व-प्रभा-धर्ति-सकल-
 नक्षत्रगणः स्वमीन्द्रदेवाऽऽकल्पदक्षिण विदयेषा मनानि, सपथेव
 प्रधान-पट-कुटीर-द्वारमासाद । तत्र च दर्शयिमालोऽयदुक्तवाध
 यत् पुष्पनगर-निवासी गायत्रीऽऽमप्रभ-त गान-रस-रसायने-
 रमन्दमानन्दाद्यनुमिष्टाभीति । तदवगत्य स भूमिपारेण कश्चिन्

पश्चिमदूरे । वसन्तकालेन, आरुहान, अउद्य नीरसान् दुःखान्, छद्म-
 'निव'प्राप्तः । उपमा । वयं वरतीति वार्धक्यदक्षन् । "विषयो
 वरः सन्ति" इति सप्त । आरुहयन्त = वर्योऽनुपन् । वीणाया आवरणम् =

और धन भर में ही उसे वसन्त (पञ्चम) ऋतु की हवा से गिरे सूखे
 पत्ती की ठण्ठ मार भगावेंगे । फिर हमारे माथिक के नीकर, शिवाला
 को छक से रस्सियों से बाँध कर, रिबड़ में बन्द करके, बाँधे जा ही अपने
 बंध में कर लगे । लेकिन 'पर विषय हा बड़ा गोपनीय है, किसी के ध्यान
 में न पड़ने पाये' इस प्रकार उत्तर देते हुए देखकर, मन-हा-मन 'भार
 बोझ धन्य है, जिसके अति गोपनीय विषय भी यहाँ से इस प्रकार वैजे
 रहते हैं, पर मगठे परले सिरे के पुरे हैं, आजकी पूतता इनके आगे
 सकल नहीं ही सकती' देखा करते हुए, अपने सेब से सभी परदेदारों को
 निग्रम कर, अपनी मुन्दगीता से सभी के दरयो को अपनी और सौचते
 हुए से गार्पिष (जानरम) बात का बात में प्रधान खेमे के दरवाजे पर
 पहुँच गये । वहाँ परदेदार से मिले और कहा कि पूना नगर का निवासा
 मैं तुम्हें को गानरस के रसायन से आनन्दित करना चाहता हूँ । उनका

कदाचित् परिपन्थि
 सह विषं पाययेत्,
 कोऽपि गायक एव वा वीणया सह खड्गमानीय खण्डयेदित्यदि
 ध्रुव एव तस्य विनाशः; ध्रुवमेव पतनम्; ध्रुवमेव च पशुना
 मरणम् । तन्न वयं तेन सह जीवन-रत्नं हारयिष्यामः” इति
 व्याहरत्; इतरांश्च—

“मेवं भोः! इय एव आहव-क्रीडाऽस्माकं भविष्यति, तत् पूर्वं
 सन्धि-यात्ता-व्याजेन शिव एकत आकारयिष्यते, यावच्च स स्वसेवा
 मपदाय एकाकी अस्मत्स्वामिना सहाऽऽलपितुमेकान्तस्थाने यास्याति,
 तावद्वयं इयंता इव शकुनिमण्डले महाराष्ट्र-सेनायां, छिन्नं

दुश्मनो शास मेजी गई कोई चेखा ही मुझे मदिरा के साथ विष न मि
 दे, कोई नद ही पान के साथ खर न मिष्टा दे, कोई गायक ही बंग के
 साथ सह्य लाकर मेरे टुकड़े-टुकड़े न कर दे, उसका विनाश अवश्यम्भा
 दे, उसका पतन होने में कोई रुन्देह नही, उसका पशुन मारा बंद
 निश्चित है । इसलिए हम उसके साथ अपना बहुमूल्य जीवन न
 नेंचायेगे । इस प्रकार करते हुए कुछ सिपाहियों और दूसरों को उनके
 घन के साथ नुर से बाहर, ऐसा मत करो, क्या ही हमारी मुद कोरा होय,
 मुनते है कि सन्धि की बातचीत के पतने शिवाजी को एक ओर बुलाने
 बायल, और न्यों ही वह अपनी सेना को छोड़कर हमारे मासिक के का
 कत जाने के लिए एकान्त स्थान में जायेंगे, इस बात परियी पर का
 का दाव, मगही का सेना पर मार-काट मचाने हुए एक भाग दूट पाए

भिन्धि-इति कृत्वा युगपदेव पतिष्यामः, यमस्त-याताइत-नीरसकृ-
दानिव च क्षणेन विद्रावयिष्यामः । इतस्तु छलेनात्मस्यामिसहस्राः
निश्वं पाशैर्बद्ध्वा पित्ररे स्थापयित्वा तं जीवन्तमेव वशंवर्द्ध करिष्य-
न्मि । परन्तु गोप्यतमोऽयं विषयो मा स्म भून् कस्यापि कर्मगतः—
ति कर्मान्तिकं मुख्यमानीयोत्तरयतः सांघामिक-भटानवलोरु-
न्मः, “धन्या भवन्तो जेपा गोप्यतमा अपि विषया एवं धीविषु
वकीर्यन्ते । महाराष्ट्रा भूताचार्या, नैतेषु भवतां धूर्तता सफला
रपति” इत्यात्मन्येयाऽऽत्मना कथयन्, स्व-प्रभा-धर्षित-सकल-
क्षकगणः स्वसौन्दर्येणाऽऽकर्षयन्निव विश्वेषां मनोभिः, सपद्यं
स्थान-पट-कुटीर-द्वारमाससाद् । तत्र च प्रहरिणमालोक्यदुःखवांश्च
पत् पुण्यनगर-निवासी गायत्रोद्भमप्रभवन्तं गान-रस-रसायने-
मन्दमानन्दयितुमिच्छामोति । तदयगत्य स भूमन्चारेण कश्चित्

श्लिष्टयूदे । वसन्तवातेन, आरतान्, अतएव नीरसान् शुक्लान्, उदा-
नेवन्प्रार्णाव । उपमा । यद्य वदतीति वशंवर्द्धतम् । “द्विवक्त्रो
तः सवि”ति सच् । आकर्षयन् = वशीकुर्वन् । शीलाया आवरणम् =

भीरु धन भर में ही उसे वसन्त (पतझड़) ऋतु की हवा से त्रिरे एखे
रखी की तरह मार भगावेंगे । हपर हमारे मालिक के नीकर, विशाका
को छल से शस्त्रियों से बाँध कर, बिजड़े में बन्द करके, थोटे बाँ ही अपने
बघ में कर लेंगे । लेकिन ‘यह क्षिप्र ही बड़ा गोपनीय है, किता के कान
में न पहुँचे पाये’ इस प्रकार उत्तर देते हुए देखकर, मन-हा-मन ‘भाप
कीज धन्य है, जिनके अति गोपनीय विषय भी शस्त्रों में इस प्रकार पड़े
रहते हैं, पर मराठे परले सिरे के धूर्त हैं, आपकी धूर्तता इनके भागे
सकत नहीं हो सकती’ ऐसा कहने हुए, अपने ठेक से सभा परदेदारों को
निश्चय कर, अपनी सुन्दरता से सभी के हृदयों को अपनी ओर खींचते
हुए से गार्ग्यश्र (जानरग) बत का बात में प्रधान सेमे के दरवाजे पर
पहुँच गये । वहाँ परदेदार से मिले और कहा कि पूना नगर का निवासा
मैं हुए को गानरस के रसायन से आनन्दित करना चाहता हूँ । उनका

निवेदकं सूचितवान् । स चान्तः प्रविश्य, क्षणानन्तरं पुनर्वर्तमानं गत्यगायकमवृच्छन्—‘किं नाम भवतः ? पूर्वं कदाऽपि समागतं न वा ?’ अथ स आह—‘तानरङ्गनामाऽहं कदाचन गुप्ताङ्गणं गतम् । न पूर्वं कदाऽपि ममात्रोपस्थानं संयोगोऽभूत्, अथ भवत्यनुकूलानि चेच्छ्रीमन्तमवलोकयिष्यामि’ इति । स च ‘अतः इत्युदीर्य पुनः प्रविश्य क्षणानन्तरं निर्गत्य च, विचित्र-गायकसह निनाय ।)

तानरङ्गस्तु तेनैव तानपुरिका-हस्तेन बालकेनानुगम्यमानः शनः शनः प्राविश्य, प्रथमं द्वितीयं तृतीयञ्च द्वारमतिश्रम्य, कांश्चिद्द्वन्द्व-स्वरान् सन्दधतः, कांश्चिद्दीणाचरणमुन्मुच्य, प्रवालं प्रोञ्ज्य कोणं कलयतः; कांश्चिदविचलोऽयमेतेनैव सह योज्यन्तामपरवाज

आच्छादनवस्त्रम् । प्रवालम् = वीणादण्डम् “वीणादण्डः प्रकृत्यादि” ल्यमरः ! कोणम् = वादनोपयोगिनमुपकरणविशेषम् । “मिश्रण

भाव समझकर उसने भीड़ों के इशारे से एक सन्देशवाहक को सूचित किया । उसने अन्दर जाकर क्षण भर बाद पुनः बाहर आकर गायक पूछा ‘आनन्द नाम क्या है । आप पहले कभी आये हैं या नहीं ?’ गायक ने कहा ‘भैरा नाम तानरंग है, शायद कभी यह नाम आपके कानों में पड़ा हो । मुझे पहले कभी यहाँ आने का अवसर नहीं मिला, आज जो भाग्य ने साथ दिया तो हुजूर के दर्शन करूँगा ।’ वह ‘अच्छा’ कह कर भीतर जाकर और थोड़ी हो देर में बाहर आकर उस विचित्र गायक के साथ ले गया ।)

तानरंग—जिसके पीछे-पीछे तानपुरा साथ में छिपे वह बालक चला रहा था—ने धीरे-धीरे प्रवेश कर, पहले, दूसरे और तीसरे दरवाजे को पार कर, किसी को मृदङ्ग के स्वर साधते, किसी को सितार का गिटार उतार कर, वीणादण्ड को पोंछ कर, कोण (मिश्रण) पहनते, किसी को ‘समुरी’ का स्वर अविचल है, इसी के साथ अन्य वाजों को मिश्रित

वे १

द्वितीयो निभासः

नि वंशोरखं साक्षीकुर्वतः; काञ्चिन् कलित-नेपथ्यान्, पादयोर्न-
 ितः नभस्यलम्बिगुटिकातः करतालिकामुत्तोलयतः;
 नासामाधुन्य, मयेणम्व-काकली
 केचिन् ताम्बूल-
 ययतः; सम्मुखे च दृष्टतः पाद-
 वाहकैः, अपरनिष्ठपुताशन-भाजन-हस्तैः, अन्यैरनवरत-चालित-
 चामरैः, इतर्यद्वाञ्जलिभिर्लाटिकैः परिपूतम्, रत्नजटिनोष्णी-
 पिकामस्तकम्, सुवर्ण-सूत्र-रचित-विचित्र-कुमुम-गुडमल लता-

रति हिन्दी । साक्षीकुर्वतः = साक्षाद्विती नयतः । इतरवाद्यस्तथापि
 प्रमाणता प्रापयत इति यावत् । करतालिकाम् = "करताल" इति हिन्दी ।
 काकलीम् = पुष्पं कलम् । "ईषदये चेति" कोः कादेशः, गोपयित्वात्
 ङीष् । "काकली तु कले सुम्" इत्यमर । निष्ठपुताशनम् = पद्मराः ।
 "वीकदान" इति हिन्दी । लाटिकैः = अधिवर्तिभासनाश्रवणोक्तधर्मैर्न
 तु कार्यसम्पादकैः । "लाटिकाः प्रभोभांलरशा शार्फमभ य"
 इत्यमरः । सुवर्णमूत्रेण = सुमत्तमपुष्पजतनुना, "कलाम्" इति
 हिन्दी, रचितं वा विविधाः = अनेकप्रकाराः, कुमुमगुडमललता =
 पुष्पकलिकावस्त्यः, काञ्चिं प्रतानैः = वितननैः, आङ्कितः = अङ्कितः,
 यर करतैः, किसी को बेव रचना कर पैरो में गुँथकर बाँधते, किना को कन्वे
 पर लटकती होती है करताल निकालते, किसी को कान पर टाँहिना राख
 रखकर, आँखें मूँद कर, नाक तिकोड़ कर, पुटनों के पल डेटकर, जगती
 हाथ पैरों कर, चीन्हा के स्तर के साथ अपनी काकली (सुम् कम्मान)
 का मिश्रण करते; मोरसामने, वंछे तथा हाथ-पाँव बैठे हुए कुछ ताकत-
 भावियों तथा दूसरे हाथ जोड़े लड़े पावरस जोड़ी से चिरे हुए, तिर
 पर रख बड़ी टोपा लगाये हुए, संज्ञे के टाँगों से बड़े विचित्र दू-

प्रवानाङ्कित-कञ्चुकं महोपग्रहमेकं क्रोडे संस्थाप्य, तदुपरि सन्वर्तितभुजद्वयम्, रजत-पर्यङ्गे विविध-फेन-फेनिल-शीरधि-उल्लसन्-छाविमग्नोदुर्बल्यां तूळिकायामुपविष्टमपजलध्यानं च ददर्श ।

ततस्तु तानरङ्ग-प्रभा-चशीभूतेषु सर्वेषु 'आगम्यतामागम्यतामस्यतामास्यताम्' इति कथयन्तु, तानरङ्गोऽपि सादरं दक्षिण हस्त-नाड्यद्वयमूचक-सङ्केत-सङ्कारेण यथानिर्दिष्टस्थानमलङ्घ्यकार ।

ततस्तु शतरगायकेषु सगर्वं सामूयं सश्रोभं साश्लेषं सचक्षुरि-रुकाग्रं साशिरःपरिवर्तनं च तमालोकयन्तु अपजलस्थानेन स-सम्बन्धमभूदाद्यापः ।

कञ्चुकः = निचोली कपड़ तम् । मपहोपग्रहम् = महोपधानम् । "मकर" इति हिन्दी । विविधफेनेन = प्रचुरदिग्दर्शनेन, फेनिलस्य = फेनसंज्ञितस्य, शीरधे = वारिधे, उल्लसन् छाविम् = शोभा, अङ्गोदुर्बल्याम् = शारपन्थान् । दृढमस्ति यस्यां वा तूला = दृढवती, तूलेव तूळिका = दृढवती शिरः, तस्याम् । "कई की गद्दी, लोसक" इति हिन्दी । कृचं = चञ्चलमनुचिलपन्थान् विन्नन-पकुदय एवेति यम् ।

आदरमूचकसङ्केतः = "सलाम" इति हिन्दी ।

कहिलो चार बेनचूरी वाली अचकन परने, गद्दी में एक बहो-सी मकरा लपका उस पर भस्मे दीनी हाथ रखे हुए, पड़ी के पलंग के ऊपर, प्रचुर कन से फेनिल समुद्र की शोभा को मान कर रहे गद्दी पर बैठे कञ्चुक की देखा ।

उसके बाद तानरङ्ग का चञ्चलद्वय से सर्वत्र मयमुग्ध होकर 'माहव' माहव' के उद्वे' के उद्वे' करने पर, तानरङ्ग ने भी दाहिने हाथ से ललाट पर हुए निर्दिष्ट भासन मङ्कटन किया ।

कन की वहाँ के गद्दी, हँस, छेदवाह और निन्दा के साथ आने के लगे हुए का तथा निर दिशा दिशा पर, तानरङ्ग का देखने पर, मङ्कट की क लाव तानरङ्ग की इस प्रकार कञ्चुकत हुई ।

MAHAMAHOPADHYAYA
Gopi Nath Kaviraj M. A.

2. A, Sigrā

BENARÉS

Dated 26-3-16

I have read with great interest the revised edition of the Late Pandit Ambika Datta Vyasa's work entitled "Sivataraj Vajava." It is a well known historical romance in Sanskrit prose based on the story of the Maharashtra Chief Sivaji and written in a graceful and lucid style.

The author was a distinguished religiouspreacher in his time whose Hindi speeches in different parts of the country won for him a great reputation as an orator. But the present work shows him as a gifted Sanskrit writer. In the history of Sanskrit prose literature this work, though a recent production, deserves a lasting place.

It is hoped that students interested in Sanskrit studies and in the art of Sanskrit composition will appreciate it as a valuable aid.

Gopinath Kaviraj

अपञ्जलग्नान्—विन्देतावाग्नय्यो भवान् ?

तानरङ्ग—धीमम् ! राजपुत्रदेशीयोऽहमस्मि ।

अपञ्जलः—ओः ! राजपुत्रदेशीयः ?

तानः—आम् ! धीमन् !

अपः—तन् वयमत्र महाराष्ट्रदेशे ?

तानः—जेनापने ! मम देशाटन-व्यसनं मां देशादेशं पर्या-
टयति ।

अपः—आ ! एवम् ! त्वत्किं प्रायः पश्येदिति भवान् ?

तानः—एवं वगुपते !, नव्यान् नव्यान् देशानवलोकयितुम्,
नवा नवा भाषा अवगन्तुम्, नूतना नूतना गान-परिपाटीश्च कल-
दितुम् एषमान-सहाभिलष एष जनः ।

वाग्नय्यः = निवासी । “बहोरतध्वन् बर्हिरि निन्वे” ति ताम्ना ।
पर्याटयति = सर्वतो भ्रमयति । एषमानः = वृद्धिं गच्छन्, महान् अभि-

अपञ्जल तां—आप किस देश के निवासी हैं ?

तानरङ्ग—हुजूर ! मैं राजपूताने का हूँ ।

अपञ्जल तां—ओह ! राजपूताने के ?

तानरङ्ग—हाँ, हुजूर !

अपञ्जल तां—तो यहाँ महाराष्ट्र देश में कैसे आना हुआ ?

तानरङ्ग—सेनापति जी ! अपने घूमने के शौक के कारण मैं एक
देश से दूसरे देश में घूमता रहता हूँ ।

अपञ्जल तां—अच्छा, यह बात है, तो क्या आप अक्सर घूमा
करते हैं ?

तानरङ्ग—हाँ सेनापति जी ! नये-नये देशों की देखने, नई-नई
भाषाओं को जानने, नई-नई गान शैलियों को सीखने का मुझे बड़ा
शौक है ।

अथः—अहो ! ततस्तु बहुदशी बहुशत्रु भवान् । अथ क्व
देशे गतो भवान् ? भूयतेऽतिथैल्लक्षणं तद्देशस्य ।

तानः—सोनापते ! वर्षययात्पूर्वमहं काश्यां गङ्गायां संन्यस्य
जगन्निनी-देशीय-क्षत्रिय-कुलालङ्कृतं भीमपुर-देशमालोक्य, गङ्गा
गण्डक-तटोपरिष्ठं हरिहरनाथं प्रणम्य, यिलासि-कुल-विश्राम
पाटलिपुत्र-पुरमुत्तप्य, सीताकुण्ड-विक्रमचण्डिकादि-पीठ-
पाठ पूजितं विक्रम-यशःमूचक-दुग्गायत्री-शोभिने देवगुणोत्तम
क्षेत्र-प्रान्ते मुद्रालपुरं निरीक्ष्य, कर्णे-दुर्गे-स्थानेन तपशीमहामुने
ब्राह्मणमङ्गदेशं दिनप्रथमागुण्य, अतिवर्द्धमानोभय वर्द्धमान-नग-
रं सम्यक् समालोक्य, यथोचित-सम्भारैस्तारकेभ्यस्तुष्टयार्थं, ततो

त्याग - इत्यादि, पश्य मः । जगन्निनी-देशीय-क्षत्रिय-कुलालङ्कृतं, भवान्
भीमपुर-देशं तत्रापि । सो वा हि बभूवोऽपि-या नानिदूरे भारतनगरे । देव
गुण्य - ब्रह्म-नगरे, तत्रापि, आदिनः प्रान्ते पश्य मः । मुद्रालपुरं
'मुद्राल' इति नाम्ना । वर्द्धमाननगरम् - अथ ये "वर्द्धमान" इति कथयन्ति ।

अथ क्व गतो - नव नो आने बहुत कुछ देखा सुना है । कहां कहां
गया है ? कहा है वह देखा बहुत मझा है ।

उपि पूर्व वदन्ते, पूर्ववत् उपि च चिरमदमदात्तामकार्षम् ।

अथः—किं किं वि पूर्ववत् उपि ?

तानः—आम् श्रीमम् ! पूर्ववत् अपि सम्यगवाटोवदेत् जनः,
यत्र मान्य इन्द्रो वदन्ती पतिमदं वती वदेव इषीभृता यव-
पुत्र-इन्द्र-वामनाभिः वदन्ती यव-इन्द्र-इव यव-
वेना-वामना-वृत्ता इन्द्र-देवा विभजन् इन्द्रो नाम नदी भूभागो
वामनाभि, यत्र वामना-सुमधुर-वाम-वृत्ताभि वृत्ताभि-
वृत्ति-वदन्त्या-वदन्त्या-वदन्त्या जगत्-वदन्त्या नाम इन्द्रो-

अदमदात्ताम् = पूर्वम् ।

अवाटोवदेत् = अवलोकात्तया । मान्यो = तथेयान्तर्गतः, मान्य-
ताम् = मान्यताम् । वदन्ती = वदन्ती । वदन्ति वदन्ति विदन्ति-
वदन्ति विदन्ति वदन्ति । वदन्ति = वदन्ति । इषीभृता = इन्द्र-
वृत्ताभि नदी । इन्द्रो = वामनाभिः । "इन्द्रो वदन्ति" इत्यमरः ।
इन्द्रो वदन्ति = "इन्द्रो" इति वदन्ती । वामना-सुमधुर = "वामना-
इति नाम । वृत्ताभि = वृत्ताभि, वृत्ताभि = वृत्ताभि, वृत्तिः =
वामना, वदन्त्या = वदन्त्या, वदन्त्या = वदन्त्या, वदन्त्या =

भी पूर्व में विद्यमान देश में और पूर्वा देश में, बहुत दिनों तक भ्रमण
रिखा है ।

अथ जगत् भी—कहा, कहा, कहा, पूर्वी देश में भी ।

तानः—ही इन्द्र ! मैंने पूर्वा देश या पूर्व भ्रमण कर देखा
है । जहाँ विनाश की हुई कदम का पवित्र को अन्तर्गत से मतलब है, जहाँ
कदम में विद्यमान हो गई इन्द्रो के समान, वदन्ती नदी बहता है, जहाँ
इन्द्रो (एक विशेष प्रकार का विष) के समान वैदिकों का सेवा के नाश
कर्म में वदन्ती इन्द्रो नाम का नदी, इन्द्रो को भारतवर्ष से वृत्त करता
हुआ, भूमिगत को छोड़ता है, जहाँ वदन्ति रम से मरे, यवन्ति इन्द्र
और वदन्ती वदन्ती वदन्ती वदन्ती वदन्ती वदन्ती वदन्ती वदन्ती वदन्ती वदन्ती

वन्ति, यद्देशीयानां जम्बीराणां रसालानां नालानां नारिकेलानां खजूरानां च महिमा सर्वदेश-रसज्ञानां साग्रेडं कर्णं गृह्णाति, यत्र च मयंकराऽऽवर्त-सहस्राऽऽकुलामु स्रोतस्वतीषु महोहोकारं क्षेपणीः क्षिपन्तः, अरित्रं चालयन्तः, बडिशं योजयन्तः, कुवेणीम्य-म्रियमाग-मत्स्य-परीवर्त्तानालोकमालोकमानन्दन्तः, अट्टप्रतटेऽपि महाप्रवा-हेषु स्वल्पया कूष्माण्ड-फकिराकारया नौकया मित्राञ्जन-लिप्ता इव मसी-ग्नाता इव साकारा अन्धकारा इव काला धीवर-बाला निर्भयाः कीडन्ति ।

जयनशीलाः, वर्णां येषां तानि । नारङ्गाणि=नागरङ्गाणि । “नारंग” इति हिन्दी । भयङ्करैः=भीतिजनकैः, आवर्त्तसहस्रैः=बहुसंख्याम्भमा भ्रमे “स्यादावर्त्तोंऽम्भसा भ्रम” इत्यमरः, आकुलामु । स्रोतस्वतीषु=नदीषु सहोहोकारम्=नौकादण्डप्रक्षेपावसरे तद्देशीयाः “हो हो” शब्दं कुर्वन्ति क्षेपणीः=नौकादण्डान् । “नौकादण्डः क्षेपणी स्यादि” त्यमरः । “डोंडा” इति हिन्दी । अरित्रम्=“अरित्रं केनिपातक” इत्यमरः । “पतवार” इति हिन्दी । बडिशम्=“बडिशं मत्स्यवेधनमि” त्यमरः, कुवेण्याम्=मत्स्याधान्यां तिष्ठन्ति ये ते कुवेणीस्थाः, म्रियमाणाः=आसन्नमरणाः, मत्स्यास्तेषां परीवर्त्तान्=पाश्वरपरिवर्त्तितानि । आलोकमालोकम्=समवलोक्येत्यर्थः, फकिरा=“फाँक, पाँकी” इति हिन्दी । धीवरबालानां करनेवाले विश्वविख्यात संतरे पैदा होते हैं, जहाँ के नीकू, आम, नारियल और खजूरी का नाम सभी देशों के रसिकों के कान में बार-बार पड़ता है, और जहाँ भयंकर हज़ारों भँवरों से भरी नदियों में, ‘हो हो’ करते हुए डोंड डालते और पतवार चलाते हुए, बंसी बालते, जाल में फँसी मरणामग्न मछलियों का छटपटाना देखकर आनन्दित होते हुए, जिनके भी नहीं दिखाई देते ऐसे महाप्रवाहों में भी छोटी-सी कुँभड़े की पाँक आकार की नाव से, पिछे हुए अञ्जन से त्रिपे-पुते से, स्याहा में डूबे-से, और धारण कर आये हुए अन्धकार के समान काले धीवरों (मछुवे) के लड़के निहट होकर खेलते हैं ।

अप०—[स्वयं हसन्, सर्वाश्च हसतः पश्यन्] सत्यं सत्यम् !!
धन्यो भवान्, योऽल्पेनैव धनमेव विदेश-भ्रमणेः चानुरी कलयति ।

तानः—धन्य एव यदि युष्मादृशैरभिनन्द्ये !

अप०—(क्षणान्तरम्) अथ भवान् मूर्च्छना-प्रधानं गायति,
तान-प्रधानं वा ?

तानः—इदं तादृशम् ।

कालत्वमुपेक्षते भिन्नाङ्गनलिता इव, मत्तोस्नाता इव, साकारा अन्यकारा
इवेति ।

अभिनन्द्ये, कर्मणि उत्तमपुरुषे । मूर्च्छनाप्रधानमिति, अविच्छेदं स्वरात्
स्वयन्वर्त्तमानिमूर्च्छना, सविच्छेदं स्वयत्स्वरान्तरप्रातिरवानः । “स्तुतीमवदमाम-
विनेयमूर्च्छनामवेषमाणं महतीं मुहुर्मुहुरिति वायुसम्भवेन मूर्च्छना कथमि-
वोद्भास्यते इति भाष्य एव जानातु, परिसमाप्नोतु वा बीणावैष्णव्यं सर्वमिति
मूलवृष्टिष्पृष्टतृप्तिणी । महत्यास्तस्त्वयानुगागु तन्त्रीषु क्रमिकेण पवना-
घटनेन निर्दिष्टमूर्च्छनाया अप्याघातान्माषाद्येनो निरर्थक इति दाशनिष्ठसर्व-
भौषा गोम्यामिश्रामोदरशास्त्रिचरणाः । “आरोहायरोहक्रमयुक्तः स्वर-
समुदायो मूर्च्छनेत्युच्यते, तानस्वारोहक्रमेण भवती” इति मतम् ।

भवति च सङ्गातघातप्रपद्यम्—

“आरोहेणावरोहेण क्रमेण स्वरसप्तकम् ।

मूर्च्छनाद्यम्भाष्यं हि विज्ञेयं तद्विषयिणः ॥”

अप्रसन्न स्त्री—(स्वयं हसते हुए और हसते हुए सभी अन्य लोगो
को देखते हुए) सच है, सच है ! आप धन्य हैं, जिसने इतनी कम उम्र
में ही, इस तरह विदेशी में घूम कर इतनी चतुरता सीख ली ।

तानरंग—यदि आप ऐसे लोग में ही सराहना करते हैं तो मैं सचमुच
धन्य हूँ ।

अप्रसन्न स्त्री—(क्षणपर बाद) अच्छा, आप मूर्च्छना-प्रधान गाने हैं
वा तान-प्रधान ?

तानरंग—मूर्च्छना-प्रधान भी और तान-प्रधान भी ।

अप०—(क्षणान्तरम्) अस्तु, आलप्यतां कश्चन रागः ।

तान०—(किञ्चिद् विचार्य) आत्मा चेदका राग-माला-गीतिं गायामि, यत्र प्रत्याभोगं नवीन एव रागो भवेदेकेनैव च ध्रुवेण सङ्गच्छेत, तत्तद्राग-नामानि च तत्रैव प्राप्येरन् ।

अप०—आः ! किमेवम् ? ईदृशं तु गानं न प्रायः श्रूयते, तद् गीयताम् ।

आलप्यताम् = आलापः कियताम् । विशकलस्य रागोदीरणमालापः ।
रागः = रज्जुकरसन्दर्भः ।

“योऽसौ धनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।

रज्जुको जनचित्तानां स रागः कथितो ब्रुवैः ॥”

रागमालाम् = तन्नाम्नीम्, गीतिम् । प्रत्यालापं विभिन्नीभवद्गीतगैर्मात्सरूपैः सहितत्वात् । तदाह-यत्रेति । प्रत्याभोगम् = प्रतिगोषसङ्गम्, उच्चारणविषयाणां शब्दानां शरीरत्वमाश्रित्य तथोक्तम् ।

ध्रुवेण = स्थिरपदेन । सकलपादान्ते वारं वारं समुच्चारमाणत्वेन ध्रुवत्वम्, अत्र एव तथा संज्ञा । सङ्गच्छेत = सम्मेल्येत, “समोगम्पृच्छि-
म्याम्” इत्यात्मनेपदम् । स्वरान् = निपादप्रमृतीन् ।

निपादपर्यन्तगान्यारपद्ममध्यमधैवताः ।

पञ्चमधैवती सप्त तन्वीकण्ठोत्पिताः स्वराः ॥ इत्यमरः ।

अङ्गबल मी—(थोड़ी देर बाद) अच्छा, कोई राग बतलायिये ।

तानरंग—(कुछ सोचकर) अगर हुजूर का हुक्म हो तो एक ‘राग-माला’ गीत सुनाऊँ, जिसमें गीत के प्रत्येक गोपसङ्ग में एक नया ही राग होगा और वे सब एक ही ध्रुव से मिलेंगे, तथा उसी में उन सभी रागों के नाम भी आ जायेंगे ।

अङ्गबल मी—अच्छा ! क्या ऐसा है ? ऐसा गाना तो अक्सर नहीं सुनाई पड़ता, अच्छा गाइये ।

द्वितीयो निश्वासः

तानपूरिकायाः स्वरान् समेत्य पातित-वाम-जानुः तान-
-मुग्धं छोटे निधाय दक्षपादस्योत्पितजानुनि च दक्ष-दक्ष-
स्थापन-पुर सरं तेनैव हस्तेन तज्जन्दमुल्या तानपूरिकां रण-
वकण्ठेनापि श्रीन् मामान् सप्त स्वरान् समधान् । तन्मात्र-
नैव मुग्धेष्विषाविलेपु इमां राग-माला-मोतिमगायन्—
सखि हे नन्द-जनय आगच्छति । सखि० ॥
मन्दं मन्दं मुरली-रणनैः समधिक-मुग्धं प्रवच्छति ॥

पातितं वामजानु येन सः । गायकानामवस्थानरीतिः । दक्षदक्षम्य=
नैनाकाम्य यः कूर्परः = कपोलि, “स्वात्कपोलिषु कूर्पर” इत्यमरः,
मुद्गमप्यमन्धिरिति यावत्, तत्स्थापनपुरस्सरम् । श्रीन् मामान् = यद्ब्रम-
ममगान्धारान् । तथा चोक्तम्—

“यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि ।
तथा स्वराणां सन्दोहो माम् इत्यभिधीयते ॥

यद्ब्रमामो मवेदादी मध्यममाम एव च ।
गान्धारमाम इत्येतद् मामश्रयमुदाहृतम् ॥”

समधान् = समयोद्ध । सखि ! = आलि । मुरलीरणनैः =
वंशीस्वनैः । समधिकम् = प्रधानन्दलधुनम् । छोटेछोटे नन्दमुनस्त-

उमके बाद तानपूरे के स्वरो को मिला कर, बायाँ पुटना टेक कर,
जानपूरे की तुम्ही को गोद में रलकर, दाहिने पैर के उठे पुटने पर
दाहिने हाथ की कुइनी रखकर, उसी हाथ की तबली उँगली
से तानपूरे की बजाने हुए तानरंग ने अपने कण्ठ से भी सीन
मामो (यद्ब्र, मध्यम और गान्धार) और निगादारि सात स्वरो को
अलापा । इतना सुनकर ही सबके मुख हो जाने पर इस ‘धगमाध’ मोल
को गाया—
हे सखि ! नन्दनन्दन भीकृष्ण आ रहे हैं । मुरली की मन्द-मन्द

भैरव-रूपः पापिजनानां सतां सुख-करो देवः ।
 कलित-ललित-मालती-मालिकः सुरवर-वाञ्छित-सेवः ॥
 सारङ्गैः सारंग-मुन्दरो दृग्मिर्निपीयमानः ।
 चपला-चपल-चमत्कृति-वसनो विहित-मनोहर-गानः ॥
 श्रोवत्सेन लाञ्छितो हृदये श्रीलः श्रीदः श्रीगः ।
 सर्वश्रीभिर्युतः श्रीपतिः श्री-मोहनो गवीशः ॥

शाङ्ख-पापिजनानाम् = अविनयणाम् । भैरवरूपः = भयङ्करः । तन् प्रकृतीनां राक्षसायमानानामपञ्चलत्वानश्मृतीनामपि पापित्वात्तेषामपि भै एवेति ध्वनिः । सताम् = सत्त्वयुतां सज्जनानाम्, शिवादीनाम् । कलित-ललित-मालिका येन सः । सुरवरैः = इन्द्रादिभिः, वाञ्छिता सेवा यस्य सः । सारङ्ग इव सुन्दरः । “सारङ्गो मृगपक्षिणोः” । सारङ्गैः, दृग्मिः = नन्तः निपीयमानः = सञ्चालनं योष्यमाणः, चपलेव = विद्युदिव, चपला चपल-तिर्यस्य तादृशम् चञ्चलश्चाकचक्यं, वसनं यस्य सः । विहितं मनोहरम् = धोतृविस्तारकर्म, गानम् = गीतियेन सः । श्रोवत्सेन = श्रोत्रपदेन । लाञ्छितः = चिह्नितः । श्रीलः = श्रीमान्, “श्रीलः श्रीमान् निषण्ण वत्सल” इत्यमरः । श्रियः = धन ददातीति श्रीदः । श्रियाः = स्वयन्-ईशः । सर्वश्रीभिः = सखाभिः शोभाभिः । गवाम् = वाणीनाम्, ईशः =

ध्वनि से वे अति आनन्द प्रदान कर रहे हैं । ये भगवान् भक्तियों को दृष्टि भयङ्कर और सज्जनों को सुख देने वाले हैं, उन्होंने सुन्दर माण्डो पुष्प की माला पहन रखा है । देवता लोग भी उनकी सेवा करने को लाजपित रहते हैं । कायदेव के समान सुन्दर भक्तियों को हरिण शरणा लगाकर देख रहे हैं । उनके वस्त्र विजय के समान चमक चमकने वाले हैं और वे मनोहर गाना गा रहे हैं । उनका हृदय भीरुता नाम के चिह्न से सुशोभित है, वे श्रीमान्, सज्जन के देनेवाले, स्वामी के स्वामी, वही शोभाओं से युक्त, स्वामी के पति, भी को मोहित करनेवाले और

द्वितीयो निश्वास.

गौरी—पनिना सदा भावितो घट्टिज-घट्ट-किरोट. ।
 कनककणिपु-रदनो घट्टि-प्रथनो विदह-दशानन-कीट. ॥
 अथ एतावदेव भूत्या अतितरा प्रसन्नपु पारिपदेपु, ससाधुवारं
 दुर्मन्त्रः, वेदान्तिवारपतेति दावत् । गवा = इन्द्रिगणाम्, ईशः,
 इन्द्रपद्विद्वि या । गवाम् = दृष्टावनरशुना, स्वामा वा । गौर्याः =
 रमन्तनरायाः, पन्या = भगन्ता शिवेन । भावित. = ध्यातः । घट्टिज-
 घट्टिकीटः = मूर्खनिष्ठमुकुटः । कनककणिपु-रदन = दिग्गवकणिपु-
 रंदावः, घटाटः । घट्टिमथन = दन्तिधर्मो, वामनः । विदहः =
 नाशितः, दशानन एव कीटः = धुद्रवन्तु, येन स, भ्रंशमाः । अथ
 भैरव-कलित-सारंग-धो-गौरी-नामानि गगणाम् । तत्र भैरवः प्रथमः
 प्रातःकालिकश्च । अथ सप्त स्वयं अपेक्षन्त इत्यर्थं संपूर्णं इत्युच्यते ।
 मध्यमापन्नमा अथ प्रथमानि । ललिते कणमपेक्षतो निम्नको गान्धारनिषादी
 णेपक्षी । अथ पञ्चमो नापेक्षन् इति वैशिष्ट्यम् । सारङ्गे मध्यमनिषादी
 नेत्रक्षी कणमपेक्षतो चोषक्षी । गान्धारोऽपि संपूर्णः । कणमपेक्षतो निम्नको, गान्धा-
 रोऽपि संपूर्णः । धीरागोऽपि संपूर्णः । कणमपेक्षतो निम्नको, गान्धा-
 रनिषादापुषक्षी, मध्यमभोभयथा सति । निम्नमध्यमयोन्नमं चानुर्यन्त्यम् ।
 पश्यन्नाऽऽरोहे गान्धारपेक्षतो दक्षितो, तदानीं विहाः मध्यमन्त्येव दक्षिण ।
 गौरी गान्धर्वां रगिणी, कणमपेक्षतो निम्नको गान्धारमध्यमनिषादाधोपक्षः ।
 आरोहेऽपि नियमेन कणं त्यजन्ति, वदायित पञ्चन घेदतयत्तादिर्दं बहुतर-
 मूनोपन् । सर्वतयाविविदा मांशान तु नियमावमय मंदरिणम् ।
 वेदवर्णो के भाजिपारक ई । भा. उद्भ. ज. उन्नवा सदा ध्यान विहा
 करते ई, ये मोर मुकुट पारज करने करते, दिग्गवकिपु वा नष्ट करने
 करते, दन्ति वा दिग्गव करने करते अथ सत्य रूप व दे को मानने
 करते ई ।
 इतना ही सुनकर सब समासों के अर्थविक प्रसन्न हो करने लगे ।

६ श्री ६

निर्माणहेतुः

“गद्यं कर्षात्ता निकषं वदन्ति”

श्लोक एषम्याप्यशम्य चमत्कार-विशेषाधायकत्वे सर्वोऽपि
श्लोक प्रशस्यते, न च गद्ये तथा सुष्ठुभ्रं सौष्ठवम्; गद्ये तु सर्वा-
ङ्गीर-सौन्दर्यमुपलभ्येत चेत्, तदैव तन् प्रशंसा-भाजनं भवेद्
मध्यानाम् । पद्ये छन्द-पारवश्यान् स्वच्छन्द-पद-प्रयोगो न भव-
तीत्यनिच्छताऽपि कविना-प्रसङ्ग-भ्रान्तं स्वाभाविकं स्वल्पमपि वच-
नीयं कचिद् विस्तार्यते, कचिद् बहुवि नियताक्षरैः संक्षिप्य क्षोदिष्टं
विधीयते, कचिच्च द्वित्र-स्वाभाविक-पद-प्रयोग-समापनीयान्यपि
पारस्परिकान्ताप-ससक्त-भ्रान्त-वाक्यानि जटिलीक्रियन्ते । गद्ये
तु यदि किमपि तादृशमस्याभाविकं स्यात्; तन् कवेरेव निर्वर्त्ति
महद्वचनम्—इत्यादिकारणैः पद्यापेक्षया गद्यमेव महामान्यं भवति,
भवति च दुष्कारमपि गद्यकाव्यमेव । अत एव सुष्ठु-पद्यात्मकेषु
षट्सु महाकाव्येष्वपि गण्डकाव्येष्वपि च प्रायेष्वपि गद्यपद्यात्म-
केषु चम्पू-नाटकादिषु खानेकंपूपलभ्यमानेष्वपि, सुष्ठु-गद्य-काव्यानि
तथा नाऽऽप्तादन्ते । अस्माकं महामान्या धन्याः सुवन्धु-वाण-
दण्डिनो महाकवयो ये यासवदत्ता-कादम्बरी-दशरुमारचरितानि
मुधामपुराणि सदा सद्गुणमाख्यानि गद्यकाव्यानि विरचय्य भारत-
वर्षं सषट्-प्रमोद-वर्षं द्याधिपतः; येषां चोक्ति-पर्यालोचन-प्राप्त-
पर्याप्त-व्युत्पन्नयोऽसङ्ग-पाशलात्रा अद्यापि वर्तन्ते, वर्तिष्यन्ते च
चिराय । पूर्वभट्टार-हरिचन्द्र-प्रभृतिभिरेतैर्महाकविभिश्च प्रचार्य

शुद्धः, स एव दीन दुःख-दाय-दहनः, स एव स्वधर्मरक्षण-
क्षमः, स एव बिलक्षण-विचक्षणः, स एव च मादृश-गुणिनाग-
गमद्गमाऽऽमही वर्तते ।

अथ अपजलक्षाने—“तु किं शिर एव एवंगुणनाज-विशिष्टो-
ति? एव वा धीर-वरोऽस्ति?” इति सचकितं सभयं सतर्कं सरोमोद्गमं
पश्यन्ति, किञ्चिद् विचार्यैव नीति-कौशल-पुरुःसर गौरःपुनरवादीतु-
(नगयन् ! सामान्य-राजधन्यस्य पुत्रः शिवरीरो यदि नाम
नामविष्यस्वयमीदृश ऊर्जस्वलः, तत्कथं स्वर्गदेव-सदृशं सद्गुरं
प्रान्यन् ? नद्द्वारा समस्त कल्याण-प्रदेशं कल्याण-दुर्गं च स्वहस्त-
गतनक्षरिष्यन् ? कथं तोरण-दुर्ग-भोग-भाजनतामकलयिष्यन् ?
कथं तोरण-दुर्गाद् दक्षिण-पूर्वस्यां पर्यंतस्य शिखरे महेंद्र-

श्रेष्ठः। दीनानाम् = अनामानाम्, दुःखदायस्य = स्तेयविनिवन्ध, दहन =
प्रतिद्वेषः। स्वधर्मरक्षणे सक्षम = सौत्कारः। र्पवाचो धनधान्यः।
बिलक्षणविचक्षणः = विशिष्टविद्वान्। गुणिनां गणस्य गुणग्रहणे, आमही।
भुनास एतु।

पौरव्य के सच्चे पारता है, वे हा दानों के दुःख रुख वन के लिए दानाग्नि
के समान है, वे हा अपने धर्म का रक्षा में उतार रखते हैं, वे ही अनुव
विद्वान् हैं और वे ही इन जैसे गुणिनों के गुणों के कदरदान हैं।
इसके बाद अकबल खाँ के ‘तो क्या यह शिवाजी इस प्रकार के
[नों से मुक्त आर इतना दार है’ यह आभय, भय, अनुमान और रोमाञ्च
के साथ कहने पर मानों कुछ लोचकर, नीति कौशल पूर्वक मोर्चसिंह ने
पुनः कहा—

(दुर्ग, राजा के एक साधारण कर्मचारी के लड़के शिवाजी यदि स्वयं
इस प्रकार के तेजस्वा न होते तो स्वर्गदेव के समान साथी कैसे पाते और
उसके हाथ सारे कल्याण प्रदेश और कल्याण दुर्ग को हस्तगत कैसे कर
लेते। तोरणदुर्ग को अपना भोग्य कैसे बनाते, और तोरणदुर्ग से दक्षिण-

ऊर्जस्वलाः = बलशाली । दक्षिणपूर्वस्याम् = दक्षिणस्याः पूर्वतः
 दिशोर्बन्तरालं सा दक्षिणपूर्वा, तस्याम् । महेन्द्रमन्दिरस्य = देवेन्द्र-
 मन्दिर, खण्डमिव = अशमिव । धर्पितः = मय प्रारितः, अस्मिन्
 तम् । उपमनूः प्रियगात्रेयस्य वपनकि । डमरुदुडुकारेण, तेषां
 भगः = शिवो वर्तिमस्तम् । कथं वा प्रतापदुर्गं निरमावधिष्यदिति सम्भ-
 वतापदुर्गं विशिनष्टि तपनीयस्य = दिग्भ्यश्च, शिञ्जिनाग—वृक्ष

नरकाचलस्य, इत्यतः = विस्तारेण, विरोचितेन = शोभितेन, प्रतापेन
 नेत्रमा, तापित = अश्रित, परिपन्थिनिबद्धः = शत्रुसमूहो येन बद्धः
 शिवावशिष्टिर्गर्भनादुदात्तलङ्कारः । चन्द्रचुम्बने = इन्दुस्पर्शं, धनु-
 समर्षा, चारु = शोभनः, शिखरनिकरः = ऊर्ध्वभागसमूहो यस्य तद-
 उच्छ्रावर्गनगरमिदम्, चन्द्रस्पर्शसम्बन्धेऽसि सम्बन्धानिधानादतिशयोक्तिः
 अनुदात्तश्च भव्य एव । भुवनेदशानां किर्णः = आकाशः, अद्वितीय-
 विद्विषा, भुवा इत्या इव देवा नैव म, रक्षाकायाम् = रक्षानिग्रहकम् ।

पूर्व सा ओर पश्चात् च पश्चात् पर, इन्द्र के मन्दिर के एक भाग के ऊपर
 मन्दिरों का इत्यने वाक्य, इन्द्र को दृढ़ दृढ़ ध्वनि से शत्रुको दण्ड
 करने का उदात्त लक्षण मध्य दुर्ग का निमाण देते कर लेते । मध्य
 मन्दिरों का दक्षिण पूर्व की दृष्टि दरे मदि मध्यमों का शिखर निज
 करने मदि मध्यमों का मध्य से मध्य निज लेने दुर्गमनों को प्रकने मदि
 मदि मध्यमों का मध्य से मध्य निज लेने मध्यमों को प्रकने मदि

कुल-विधीयमान-परस्तहस्र-परिक्रमं धूमजगद्दोषूयमानानेक-
ध्वज-पटल-निर्मथित-महाकाशं प्रताप-दुर्गं निरमापयिष्यत् ? कथं
वा 'आगत एष शिष्यवीरः' इति श्रमेणापि सम्भाष्य अम्यपिरोधिषु
केचन मूर्च्छिता निपतन्ति, अन्ये विमृष्ट-शलाघ्ना पलायन्ते,
इतरे महायानाऽऽकुञ्चितान्दरा विशिथिल-धामसो नम्रा भवन्ति,
अपरे च शुष्कमुखा दशनैः कृष्णमन्थाय साग्रहं प्रणिपात परम्परा
रचयन्तो जीवनं याचन्ते ।

तदस्तस्य महायानापमवगत्य किञ्चिद्भूति इव तच्छत्रुणा चावहे-
ष्टानाकलय्य किञ्चिद्दण-नयनं इव, दक्षिण-हस्ताङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्यां
मन्त्रं परिभृजति ययन-मेनापनी, तानरजः पुनन्यवेदयन्—

कुटेन = सन्दूधेन, विधायमानाः परस्तहसाः परिक्रमाः = मण्डलानि यत्न
रे । पमदमसिद्धिं दानेन दोषूयमानानां = यत्न मण्डलानां, अनेकेषां
ध्वजानां पटलेन (निर्मथितः = बिलोडितः, महाकाशं येन तम् । महायान-
सेन = महाभयेन, आकुञ्चितानि = कण्ठमानमापान्ति, उदरणि येषां ते ।
अथ एव विरोधतः शिथिलानि दासानि येषां ते । याचन्ते = प्रार्थयन्ते ।

एक हाथों वाले लड़कों से लड़ कर-लड़ कर लड़ बिये जाने वाले,
महावीर हुई ध्वजाओं से महाकाश को मथने वाले घटावगड़ की ही जड़ें
बनवा लेते ! अथवा 'ये भीरु शिवाजी आ गये' यह भ्रमवश समझकर भी,
इनके विरोधियों में कुछ मूर्च्छित होकर बग़िर पड़ते हैं ! कुछ शत्रुवार भूष
कर भाग क्यों लड़े होते हैं ! कुछ दर के मारे पेट क कुछ हो जाने अत-
एव वस्त्रों के टोले हो जाने से नगे क्यों हो जाते हैं ! और दूसरे लूटे
हुँए घाले दाँतों में गुन दबा कर, बार-बार प्रणम करने हुए गिदगिदा कर
जीवन निधा क्यों माँगने लगते हैं ?

एक शिवाजी के महायान की जानकर, परन्तु सेनारति के कुछ दर
से जाने पर और शिवाजी के दुश्मनों की अवहेलना सुनकर कुछ कुछ
से हो जाने पर, तथा दाहिने हाथ के भेंगूडे और तर्जनी से मूँठ के भ्रम
भाग पर हाथ करने पर, तानरज ने पुनः निवेदन किया—

परन्त्यश्च सिंहेन सह शिवस्य साम्मुख्यमस्ति, तन्मन्ये इयन्त-
मनवेला तत्प्रतापसूर्यस्य ।

तत् कर्णे श्रुत्वा सन्नुष्ट इव सङ्गधराङ्गम् सेनापतिरग-
अथात्र संग्रामे कस्य विजयः सम्भाव्यते ?

स उवाच—श्रीमन् ! याद शिवस्य साहाय्यं माक्षाच्छिव ए-
न कुर्यात् ; तद् विजयपुरम्येय विजयः ।

अथ सहासं सोऽब्रवीत्—को नाम स्वपुण्यायितः शशशृङ्गायि-
कमठी-स्तन्यायितः सरीसृप-श्रवणायितः मेकरसनायितः वन्ध-
पुत्रायितश्च शिवोऽस्ति ? य एनं रक्षिष्यति, दृश्यतां श्व एरंगो-
स्माभिः पार्श्वद्वया चपेटैस्ताड्यमानो विजयपुरं नीयते ।

अस्तमनवेला, तत्प्रतापरूपसूर्यस्य समाप्तिवेलेत्यर्थः । सूर्यस्तोदयो-
न भवतः, केवलं तत्स्वप्नकासिभिस्तदनवलोकनेन तादृशशब्दव्यवहार-
एवाऽऽरथीयते । तदुक्तम् “नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सत” इति ।

स्वपुष्पमिवाऽऽचरितः स्वपुष्पायितः । स्वपुष्पम्, शशशृङ्गम्, कमठी-
(कच्छपी) दुग्धम्, सरीसृपश्रवणम्, मेकरसना, वन्ध्यापुत्रचैत्यस्तम्भ-
वालीदवस्तुनि । पर्येतानि न सन्त्येव भूतनाथः सदाशिवोऽपि नास्तीत्यर्थः ।

लेकिन आज सिंह के साथ शिवाजी का सामना हुआ है, इसलिये
मेरी समझ से यह उनके प्रताप-सूर्य के अस्त होने का समय आ गया है।

यह सुन कर सन्नुष्ट-सा यवन सेनापति बोला—‘अच्छा, इन मुद्द में
किसकी जीत की सम्भावना है ?’

तानरग ने कहा—‘हुजूर ! अगर शिवाजी की सहायता स्वयं छद्म-
जी ही न करें तो बीजापुर का ही जीत होगी ।’

तब हँसते हुए अफजल खाँ ने कहा—‘भला गगनकुमुद-सा, नरगो-
के सींग-सा, बछुई के दूध-सा, सोंप के कान-सा, मेंढक की बीभ-सा औ-
र सिक के लडके-सा शङ्कर भी कोई चीज है जो उसकी रक्षा करेगा । देखन-
असल ही रस्तिवों से बांध कर हम लोग उसे थप्पड़ मारते हुए बीजापुर ले-
आवेंगे ।’

—इति स कष्टमाकण्यं, "स्यारेषं भगवन्!" इति कथयति तान-
 र्ग्रे, अभिमान-परवशः स स्वसहचरान् सम्बोध्य पुनरादिशत्—भो-
 भो योद्धारः! मय्योदयान् प्रागेव भवन्तं पञ्चापि सहस्राणि सादिना
 दक्षापि च सहस्राणि पत्नीनां सज्जीकृत्य युद्धाय तिष्ठत । गोपीनाथ-
 पण्डित-द्वाराऽऽहूतोऽस्ति नया शिव-चराक, तद् यदि विश्वस्य
 न समागच्छेत्, तत्तरु घट्वा जीवनं नेष्याम, अन्यथा तु
 मदुर्गमनं धूळीं करिष्याम । चरत्येवं स्पष्टमुदीरणं राजनीति-घिरद्धम्,
 तथाऽपि महावेश्मन्तु न प्रतीक्षते धिवेकम् ।

तदवधार्य समस्तक-कृचान्दोलनम्—“यदाहाप्यते यदाहाप्यते”
 इति वार्त्ता धारासपातैरिव स्नापयन्तु पारिषदेषु, “गोपनीयोऽयं

सादिनाम् = अक्षारोद्दिष्टानाम् । “अक्षारोद्दिष्टानां सादिना” इत्यमरः ।
 पत्नीनाम् = पत्नीनाम् । “पदातिगतिपतगमादतिरुदात्त” इत्यमरः ।
 विश्वस्य = विश्वास कृत्वा । समस्तक-कृचान्दोलनम् = सर्गिरोद्दिष्टा-
 द्वादनम् । क्रियारिरोपणम् । अदुर्गमसो दुर्गमसो भवन्तीति दुर्गम-
 मानास्तेषु । “नशादिभ्यो भुव्यच्चेङांश्च हल” इति सूत्रेणाभूतवद्भावविषये

— तानरग के कष्टपूर्वक यह बात सुनकर हुआ । हो सता है देना ही
 हो कहने पर, अभिमान के कारण आत्म सपम खोकर अपजल छाँने
 अपने साथियों को समोपित कर आशा दी । ‘हे योद्धाओ ! आन छोड
 पक्ष रूपादय से पहले ही पाँचों हजार युद्धसवारों और दसों हजार पैदल
 सैनिकों को सुसज्जित कर युद्ध करने के लिए तैयार रहना । गोपीनाथ
 पण्डित द्वारा मने बेचारे शिवाजी को बुझाया है तो अगर वह विश्वास कर
 के आ जाय तब तो बाँव कर जोड़ित हो ले चलेंगे अन्यथा दुर्गम संहित ठसे
 भूल में मिला दगे । यद्यपि इस प्रकार सुझस-सुझा करना राजनैतिक के
 विरुद्ध है, फिर भी मंग्य आवेद्य (बोध) निवेक को परवाह नहीं करता ।
 यह सुनकर, सभासदों की सिर और दाढ़ी हिला-हिला कर ‘ओ भाई,
 ओ भाई’ धी मानी बाजियों की मूमलाधार वृत्ति से स्नान-सा करने

वृत्तान्तः कथं स्पष्टं कथ्यते ?” इति दुर्मनायमानेधिव च जम्
 देव प्रविश्य सदेनोक्तम् “श्रीमन् ! व्यत्येति भोजनसमयः—
 धत्वा “आ ! एवं क्रियेतत्” इति सोध्यासं सविस्मयं सहृदोः
 सोपयहताडनमुद्यम्य सपराजम् “

तन्ना-परवशे इव गोपीनाथे, शिवयोरः शून्य
 सत्य प्रणम्य, उपविशद्वोचच्च—अहो ! भाग्यमस्माकं यदा
 युष्मादसा भूदेवाः सरचरणरजोभिः पावयन्ति—इति ।

कथं चानय, भावसमनी । मूढेन = पाकृष्यो । सोध्यासम् = ईपयत्वे
 सह, क्रियाविशेषणम् । “सोध्यासः समनाकस्मितम्” एतन्ना ।
 सहृदोः भूतनम् = सम्भ्रजातनेन सह । सोपयहताडनम् = उपय-
 प्रहारेण गारुम् । गंध्यां शमिदं ताण्डव सर्वम् ।

रजनेन = दुर्गन्धेन, सचिताम्, पर्यङ्किकाम् = लघुपर्यङ्कम् । मधि-
 मिति यावत् । तन्ना-परवशे = निद्रापूर्वोच्छसाधीने ।

तथा “यद सोपय वात पुत्रे आस केने वदा जा रही है” यह सोच के
 दुःख नास्तत्र मा होने पर, एकाएक रमोदये ने प्रवेश करके कहा, ‘दुः-
 खाने का वक्त बंता रहा है’ । यह मुनकर थोड़ा मुस्कराकर, विनम्रपूर्वक
 से ‘नम आदयेगा’ कहकर बिदा कर सेनापति ने अन्दर प्रवे-
 श लाकर तब तक में भाषा या उसी से वापस लौट गया ।
 की रज्य पर नेह है वही है, शिवाजी पीरे ने जाकर, उन्हीं प्रणम कर
 देड गेरे कर पड़े—अहो ! हमारा सोनाम्य है कि आगरे से प्राकृत ने
 कान्हा बाबा के इचारे पर से पवित्र किया । फिर उन दोनों में एक
 धर आकर दुःख ।

अथ तयोरेवमभूवन्नालापाः ।

गोपीनाथः—राजन ! कोऽत्र सन्देह ? सर्वथा भाग्यवानसि, परमात्मनो नाहं पण्डितत्वेन कथित्वेन वा समावातोऽस्मि, किन्तु दयनराज-दृढत्वेन । तन् धृत्या यदहं निवेदयामि ।

शिवर्षाः—शिव ! शिव ! खड्गखड्ग रत्नदमुखा, जेषा श्रीमता चरणेनाद्रितं विष्णोर्गर्भे यक्षस्थलमैश्वर्य-मुद्रयेव मुद्रितं विभानि; न तेषां बाष्पण-तुल-कमल-दिवास्मृतां दयन-वैदूर्य-कलङ्क-पद्मो मुच्यते, यं शृण्वतोऽपि मम स्मृतं इव वशी । तथाऽपि कुलीना निरभिमाना भवन्ति-इति आनीतत्वेन कश्चिन् सन्देश, तदेष आज्ञाप्यता श्रीमधुरण-कमल-चन्द्रोक्तः ।

गोपीनाथः—वीर ! कलिरेव काल दयनाऽऽकान्तोऽयं भारत-

रत्नदमुखा, निवेद्यार्थक, खड्गखड्ग । “अलखलखो प्रतिपिण्डोः प्राचा कथा” । परमाना केद्वयम् = विद्वत्स्य भावः, दामता, तदेव कलङ्कपद्म । स्मृतं इव = इति इव । कुलीनाः = सद्यः ।

गोपीनाथ—इसमें क्या सन्देह ? आप सचमुच भाग्यवान् हैं, लेकिन उ समय में पण्डित या कवि के रूप में नहीं, बल्कि परमपूज्य के दृष्ट क में आया हैं, अतः मैं जो निवेदन करता हूँ—से मुनिवे ।

शिवर्षा—शिव ! शिव ! ऐसा मत कहिये, जिन आप संत, इक्षण से अङ्कित होने से विष्णु भगवान् का कलङ्कपद्म भी पण्डित के मुद्रित का घोषित होता है उन बाष्पण-तुल-कमल-दिवास्मृतां दयन-वैदूर्य-कलङ्क-पद्मो मुच्यते, यं शृण्वतोऽपि मम स्मृतं इव वशी । तथाऽपि कुलीना निरभिमाना भवन्ति-इति आनीतत्वेन कश्चिन् सन्देश, तदेष आज्ञाप्यता श्रीमधुरण-कमल-चन्द्रोक्तः ।

गोपीनाथ—वीरवर, यह कलङ्कपद्म है, यथा...

भूभागः, तन्नाम्नाकं तथा तानि तेजाति, यथा वनयामि । माम्प्रतं तु विजयपुराधीश-चित्तोर्गा भूतिं भुञ्जे शतं तदाज्ञामेव परिपालयामि । तत् श्रूयतां तदादेशः ।

शिववीरः—आर्य ! अवदधामि ।

गोपीनाथः—(कथयति विजयपुरेश्वरं यद्—“वीर ! परित्यज नवामिमां चञ्चलतामस्माभिः सह युद्धस्य, त्वदपेक्षयाऽत्यन्तमधिकं बलिनो वयम्, प्रवृद्धोऽत्र कोपः, महती सेना, बहुधा दुर्गाणि, यद्वयश्च वीराः सन्ति । तच्छुभमात्मन इच्छसि चेन् त्वत्त्वा निसिद्धां चञ्चलताम्, शस्त्रं दूरतः परित्यज्य, काप्रदनामङ्गीकृत्य, समागच्छ मत्सभायाम् । मत्तः प्राप्त-यदध्विर्जीविष्यसि, अन्यथा तु सदुर्दशं निहतः कथावशेषः संवत्स्यसि । तन् केवलं त्वयि दययैव सन्देशं

भूदिम्=जीविकाम् । अवदधामि=सावधानोऽस्मि ।

आक्रान्त है, इसलिये हम लोगों में जैसा आप वर्णन कर रहे हैं वैसा तेज नहीं रहा, इस समय बीजापुर के सुल्तान द्वारा दो गद्दे जीविष्ठा (वेतन) से अपना निवाँह कर रहा हूँ, अतः उन्हीं की आज्ञा का पालन करता हूँ । अतः उनका आदेश सुनिये ।

शिवाजी—आर्य ! मैं सावधान हूँ ।

गोपीनाथ—बीजापुर के सुल्तान कहते हैं कि—

“वीर ! हमारे साथ लड़ाई ठानने का इस सई चञ्चलता का परित्याग कर दो, हम तुम्हारी अपेक्षा बहुत अधिक बली हैं, हमारा कोप बहुत समृद्ध है, हमारी सेना बहुत बड़ी है, हमारे पास बहुत-से किले हैं और बहुत-से योद्धा हैं । अतः यदि अपना कल्याण चाहते हो तो सारी चञ्चलता छोड़ कर, घात्र का सर्वथा परित्याग कर, मुझे कर देना स्वाँकार करके, मेरी सभा में आ जाओ । मुझ से कोई बड़ा-सा पद पाकर बहुत दिनों तक जीवित रहोगे । अन्यथा दुर्दशा करके मारे जाओगे और तुम्हारी सिर्फ कहानी ही रोप रह जाएगी । अतः सिर्फ तुम्हारे ऊपर दया कर के ही सन्देश भेज

[विष्णु]

द्वितीयो निश्वासः

प्रेमयामि, अङ्गीकुरु । मा स्म वृद्धायाः, प्रसविन्या रजतश्रेतां पक्ष्म-
पङ्क्तिमधु-प्रवाह-दुर्दिने पातय" - इति ।

(शिवाजीरः—भगवन् । कथयेदेव कश्चिद् यवनराज, परं किं
भवानपि मामनुमन्यते—यद् वे अमदिष्टं च मूर्तिर्भङ्गक्या मन्दि-
राणि समुन्मूल्य, तोयस्थानानि पङ्कगीकृत्य, पुराणानि पिपा-
वेदपुस्तकानि विदार्य च, आर्यवंशीयान् वलाद् यवनीकुर्वन्ति,
तेषामेव चरणयोरञ्जलिं यद्वा लालाटिकतामङ्गीकुर्याम् ? एवं वेद
धिद् मां कुल-कलङ्कं लीयम् । यः प्राणभयेन सनातनधर्म-द्वेषिणा
दासेरकतां वदेत् । यदि चाहमाहवे प्रियेय, पंचेय, ताडनेय वा

प्रसविन्याः = जनन्याः । रजतश्रेताम् रूप्यश्वलान् । पक्ष्म-
पङ्क्तिम् = नैऋत्यमधनम् । अधुप्रवाहेण = अस्तुधाया दुर्दिने =
गरिते । मेघच्छन्नादस्य दाबकमन स्रजणया प्रयुक्तम् । अस्मान्निर्दिनस्य तत्र

पङ्कगीकृत्य = शयनगहन कृत्य । "पङ्कजः शयनशय" इत्यमरः ।
दासेरकताम् = न्ययताम् । "नृने दासेरकतासेयतामोपकथेयता" इत्यमरः ।
प्रियेय, पंचेय ताडनेय वा, क्रियाद पक्षम् । अप अहमिति कर्म ।

रहा हूँ, उसे रोकना करो । पूरी माँ का बाँदा के समान रुके रह जानियो
को भी सुभों की सड़ी में मर दुनाओं ।

/ शिवाजी—महायज ! कोई यवनराज ऐसा भलेहा कहेपर क्या आप
भी मुझे यह अनुमति देते है कि जो हमारे इन्द्रदेव का मूर्तियों को तोड़कर,
मन्दिरों को मटियामेंट कर, तोयस्थानों को भालों का बाठा बनाकर, पुराणों
को पीत कर, वेद की पुस्तकों को पाइकर, आर्यवंशीयों (हिन्दुओं) को
धर्मद्वेषी कुलस्मान् बनाते है हम उनकी के चरणों में कञ्जाल चढ़ाकर,
उनको पाक्या बन्दूक कर ? यदि मैं ऐसा करूँ तो मुझ कुलकलङ्क का पर
को बिकार है, जो अपने प्राणों के मोह से सना न धर्म के दुश्मनों का
शक्ती करे । यदि मैं मुझ से का आऊँ, एता इत्यादि जो जो पादक किया

तदेव धन्योऽहम्, धन्यो च नमः पितरौ । कथ्यतां भवादृशां
चिदुगमत्र का सम्मतिः ?)

गोपीनाथः—(विचार्य) राजन् ! धर्मस्य तत्त्वं जानामि, तत्राहं
स्यसम्मतिं फलमपि दिदर्शयिष्यामि । महती ते प्रतिज्ञा, महत्त-
योद्देश्यमिति प्रमोदाभितमाम् । नारायणस्तव साहाय्यं विदधानु ।

शिवयोग—रुग्णानिधान ! नारायणः स्वयं प्रकटीभूय न
प्रायेण साहाय्यं विदधाति, किन्तु भवादृश-महाशय-द्वारैव । तत्
प्रतिज्ञायता काऽपि सहायता ।

गोपीनाथ—राजन् ! कथ्यतां किमहं कुर्याम्, परं यथा न
मानवमं भूजेत्, तथैव विधास्यामि ।

शिवयोग—शान्तं पापम् ! मोऽत्राधर्मः ? केवलं श्रोत्रस्मिन्नुद्यान-
प्रान्तर-पट-तुष्टारे यवन-सेनापतिरपजलम्यान आनेयः; यथा
दिदर्शयिष्यामि—अथ विदुर्निष्ठानि । प्रमोदाभितमाम्—अत्यन्तं प्रमोदाभि ।

आहं तो मेरा अशोक-वृक्ष है और मेरे माता-स्ति पत्नी है । कहिये आप
के से विद्वानों के इन शिव में क्या सम्मति है !)

गोपीनाथ—(विचार कर) राजन् ! आप स्वयं धर्म का ताव जानते
हैं, इस बारे में अस्माकं आहं आप नहीं देना चाहता । आरका प्रतिज्ञा
और आपका उद्देश्य बहुत महान् है, इससे कुछ अधिक प्रसन्नता है ।
अपमान् दुष्टारा महान्ता कर ।

शिवराज—रुग्णानिधान ! अपमान् प्रायः स्वयं प्रकट होकर नहीं
बोलते, आप के कानों में बोलते हैं । आपका महान्ता करने है । अतः
आप कुछ महान्ता करने का प्रतीक्षा करिये ।

गोपीनाथ—राजन् ! कहिये, मे क्या कहें ? लेकिन यिनसे कुछ
आप न कर सकेंगे ।

शिवराज—आह ! आह ! आह ! इनसे अस्माकं या आप का
कच कर है ! अह, अह इन्ना उद न दे किन्तु रेखने मेरे मेवामनेनापि

तोऽपि महाकाव्य-सञ्चारो न चिराय स्थितिमकलयन् । भारताभि-
जन-भाषाकविभिरपि च प्रायः पद्य-प्रकृतिकैरेव समभावि-इति
जगत्प्रसिद्धिः मूरदास-प्रभृतिभिरपि पद्यान्वेव निबद्धानि । साम्प्र-
तन्तु समय-महिम्ना भारतीय-वर्तमान-भाषासु बहुधा गद्यश-
व्यानि विरच्यन्ते । चङ्ग-गुर्जरादि-भाषामूपन्यामैरेव व्याप्ता विप-
णयः । हिन्दीभाषाऽपि च प्रत्यहमतिशयमासादयति गद्यसोपाने-
ष्वेव पदाधाने । परं न केवलं प्राकृतिक-गिरां गुरवो गीर्वाण-
गिरि व्युत्पत्तिगरीयांस उपलभ्यन्ते, न वा काञ्चिद् धन्य-धन्यान्
विदाय संस्कृतसाहित्य-व्युत्पन्ना एव, इतर-भाषानुरक्ता विशेषतोऽ-
वलोक्यन्ते । अत एव भारताभिजन-भाषा-कवयः प्रायः स्वध्रमात्
साक्षात्संस्कृतसाहाय्येन शोधयितुं न पारयन्ति, न वा भाषाकवि-
समाहतान नवान नवान् मनोरमान् चमत्कारविशेषाधायकान्
पथोऽनुसरन् संस्कृत-साहित्य-वैभवेषु च निर्धनं धर्तयितुं संस्कृतज्ञा
एव प्रायशः पारयन्ति । कदाचित् पृन्दारक-चन्द्र-याग्यां गद्यकाव्य-
प्रचार-दीर्घन्यस्येदमेव प्रधानं कारणं स्यात् । महर्षिदत्तमुपहासा-
मर्दं विहम्बनं यद्—मण्डूक इव महापाराधार-पारमासादयितुं
यत्मानम्भाटशं कवि-कौशल-निकृपायितं गद्यकाव्यं मादृशः क्षोदो-
यान जनो विरचयितुं संवृत्त इति । काव्यामर्दं मा स्म भूत् तादृश-
भाव-विषट्कम्, मा स्म वा पुनः कस्यापि मोद-विशेषम्, परं
मया तु सन्ततजयमं-धूषेद्-शिवराज-वर्गनेन रसना पावितैव,
प्रमद्वनः मद्युदेग-निर्देशैः स्व-आश्चर्यं सकलितमेव, ऐतिहासिक-
कृत्यकर्त्तृभिः स्वमित्राणि शत्रुतान्येव, गिरमगलपूयैः पराशर-
पराशरार्दिभिरुपासिता संस्कृतभाषा मेवितैव, यथुतो निगोत्र्य
सर्वमेव माशावृता पौन्य-पूर-पूयैरिव-दृक्पानेदजीवयन्ती पारि-
जन-कुलम-वर्षिमिषिष वचनेरुदृशन्ती जननी मारुती समारा-
दिदेव, स्या परनिर्दिष्ट समसादिदेव । भवभूतिजगन्नाथादीनां

महेश्वर पन्थोऽहम्, धर्मो न मम विपरी । कथनां भयादहं
विदुरामय का मन्मथि ?

गोपीनाथ—(विचार) राजन् ! भूमिभूतत्वं जानामि, स्वार्थं
स्वसम्भवि कामनि दिदर्शयिष्यामि । मन्मथी मे प्रतिज्ञा, मन्म-
थोद्देश्यमिति प्रमोदाभिनवमाम् । नारायणभक्त्य माहात्म्यं विदुराम् ।

शिवरात्रि—कुर्यानिधान ! नारायणः स्वयं प्रकटोभूय न
प्रापेण माहात्म्यं विदुरामि, किन्तु भयादहं-मन्मथ-द्वारिभ । तत्
प्रतिज्ञायतो द्वादिप सदायता ।

गोपीनाथ—राजन् ! कथयता किमहं कुर्याम्, परं यथा न
मामधर्मः शृजेन्, तर्थाय विदुराम्यामि ।

शिवरात्रि—शान्तं पापम् ! कोऽत्राधर्मः ? केवलं श्रोऽस्मिन्नुद्धान-
प्रान्तस्थ-पट-कृटीरे यवन-मेतारान्तरपत्रद्वयान आनेयः; यथा
दिदर्शयिष्यामि—शक्तिविनिष्ठाभि । प्रमोदाभिनवमाम्—अन्तर्गतं प्रसीदामि ।

आज तो मेरा अशोक है और मेरे माता-रिता धन्य हैं । कहिये आप
के से विद्वानों का हम विषय में क्या सम्मति है ?

गोपीनाथ—(विचार कर) राजन् ! आप स्वयं धर्म का तत्त्व जानते
हैं, इसलिये मैं अपनी कोई भी राय नहीं देना चाहता । आरक्षो प्रतिज्ञा
और आपका उद्देश्य बहुत महान् है, इससे मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है ।
भगवान् तुम्हारी सहायता कर ।

शिवरात्रि—कुर्यानिधान ! भगवान् प्रायः स्वयं प्रकट होकर नहीं,
वरन् आप के समान महाशयों के द्वारा ही सहायता करते हैं । अतः
आप कुछ सहायता करने की प्रतिज्ञा कीजिये ।

गोपीनाथ—राजन् ! कहिये, मैं क्या करूँ ? लेकिन जिससे मुझे
पाप न लगे वही करूँगा ।

शिवरात्रि—शिव ! शिव !! शिव !!! इसमें अधर्म या पाप की
क्या बात है ! धर्म, कल इसी उद्यान के किनारे लगे झेमे में यवनसेनापति

॥ नव कथं चित् प्रकाश-यदुत्ते मंगुले नमःस्थले, परमं परिशी-
यमानां आकृतिषु, भ्रमरावलिषु च विकचनामासादृशं यद्वन्दनं,
भ्रमरावलिषु परितः प्रभृज्जलीषु अमि-द्विषु, चाटकैश्चरचका-
यितेषु कवच-चक्रकारेषु, गोपनाय-पण्डितो यामेकं शिवया-
दिशि परतश्च यवन-सेनापति-दिशि गतागत विधाय, सेनाद्वयम्
मध्य एव वस्मिन् पट-कटोरे अपजलज्ज्वलमानेन प्रवक्ष्य ।

शिवयोरोऽपि कीर्तय-कंचुकान्नलोद्-यस्मं परिधाय, सुव-
र्णमृत्र-प्रधिनोष्णीभस्यायधस्तादायमं शिरस्त्राणं संस्थाप्य, सिं-
ह-नामकं शस्त्रविशेषं कम्योरारोह्य, दृढद्व-कटिरपजलज्ज्वल-
साश्वात्काराय सज्जन्निष्ठोऽस्मि ।

विकचनाम्=विकासभावम् । उपमालङ्कारः । एवं परम् । चटका
अस्त्राणि पुमानः चाटकैः, तेषां चक्रचक्रायितेषु=चक्रचक्रवि-
चरितेषु, चक्रचक्र इत्यनुकरणगद्यः । कवचानाम्=उरस्तदानाम्,
“उरस्तदः बहुकोऽवगारः कवचोऽस्त्रियाम्” इत्यमरः । चक्रकारेषु=
तादृशशब्देषु । गतागतम्=यातायातम् । प्रवक्ष्य=व्यवस्थापितवान् ।

उसके बाद आकाश में पर्याप्त प्रकाश फैल जाने पर, जब परम्पर
आकृतियों पहचान में आने लगीं, बोरों के गुणों के कमलों की तरह
प्रफुल्लित हो आने पर, भ्रमरावलियों की तरह तलवारों के चारों ओर
दिखाई पड़ने लगने पर, कवचों की गरियों के चहचहाने की-सी आवाज
करने लगने पर, गोपनाय पण्डित ने एक बार शिवाजी की ओर, दूसरी
बार यवन सेनापति की ओर चक्र लगा कर, दोनों सेनाओं के बीच में
हो, किसी खेमे में अजल लौ को लाने का प्रवक्ष्य किया ।।

शिवाजी भी रेशमी कुर्त के अन्दर लोहे का कवच पहन कर, सेने
के तारों से गुंथी पगड़ी के नीचे लोहे का शिरस्त्राण रख कर, हाथों में
बाणगा पहन कर, दृढ़ता से कमर बस कर अजल लौ से मिलने के
लिए तैयार बैठे थे ।

मान-दन्दद्व्यमान-परमहस्र-पटखण्ड-विहित-हैम-विहङ्गम-विभ्रमा-
ज्योतिरिङ्गणायित-परस्कोटि-स्फुलिङ्ग-रिङ्गित-पिङ्गीकृत-प्रान्ता-
दोधूयमान-धूम-घटा-पटल-परिपात्यमान-भसित-सितीकृतानोकहा-
सकलकलध्वनि पलायमानैः पतत्रि-पटलेरिव सोमूयमाना-
शिविर-चस्मरा ज्वालमाला अवलोक्य, सहाहा-कारं तदभिमुख-
प्रयाताः । अपरे च महाराष्ट्रासि-भुजङ्गिनोभिर्दन्द्यमानाः, केचन

कृतो दिगन्तस्य=दिक्प्रान्तभागस्य, प्रकाशो याभिस्ताः । कडकशब्द-
निभिर्धर्षिताः प्रान्तप्रज्ञा याभिस्ताः । उद्गीयमानैः, दन्दद्व्यमानैः=नितर-
ज्वलद्भिः, परमहस्रैः, पटखण्डैर्विहितो हैमानाम्=सौवर्णानाम्, विहङ्ग-
मानाम्=पतत्रिणाम्, विभ्रमो याभिस्ताः । ज्योतिरिङ्गणायितानाम्=
खद्योतायितानाम्, परस्कोटीनाम्=अमल्यानाम्, पारस्करादित्वात् सुद-
दिवेन पराद्यवयवत्वात् न विसर्गः । स्फुलिङ्गानाम्=अग्निकणानाम्
रिङ्गितैः=उड्डयनैः, पिङ्गीकृता = पिङ्गरीकृताः, प्रान्ताः=परितरभूमय-
याभिस्ताः । दोधूयमानानाम्=नितान्तं वृद्धिं गच्छन्तीनाम्, धूमघटा-
नाम्=धूमलेखानाम्, पटलेन=ममूदेन, परिपात्यमानैः=समन्ततो विक-
र्यमाणैः, भसितैः=भस्मभिः, सितीकृताः=शुभीकृताः, अनोकहाः=
वृष्टाः, याभिस्ताः । सकलकलध्वनि=कलकलशब्देन सह, पलायमानैः
पतत्रिपटलैः=पथिसमूहैः । सोमूयमानाः=बोबुध्यमानाः । उड्ड-
भयात्कलकलं कुर्वन्ति विदगाः, इह च स एव सूचनमुखेनोत्प्रेक्षितः

भयभीत कर देने वाली, हथारों और जले कपड़ों के टुकड़ों से स्वर्णपत्रों
का भ्रम उत्पन्न कर देने वाली, जुगुप्सू के समान करोड़ों चिनगारियों के
उड़ने से पास-पड़ोस को पीका बना देने वाली, लगातार बढ़ रही धूम
धगधग से घाटी और बिम्बेरी का रही मग्न से शूशों को सफेद बना दे-
वाली, शिविर को भस्मसात कर देने वाली अग्नि की उयालाभ—
कलकल ध्वनि करके उड़ रहे पत्ती मानो जिनकी रूपना दे रहे थे—
देखकर हाहाकार करने हुए उगी और हीके । अन्य पवन मण्डलों के

तथा च तैरेवोक्तम्—

“ये नाम केचिद्भि नः प्रपद्यन्त्यदशां
 क्षान्तिं ते भित्तिस्तान् प्रति नैव
 उत्सृज्यतेऽपि मम कोटिः समानधर्मा
 काचो ह्यरे निरवशिष्टिदुष्टा च ह
 “विद्वांसो यस्तु तत्रै परदशदशाषां प्राचं वमा
 भूषणः समस्तविद्यासमदिरोन्मत्तन्महर्षि
 आभ्ये धाम्नि बभूव सात्यमधुना धन्यम् कामाक्ष्य
 स्वदासाधर माधुरी विभुषयन् वाचो दिव्यसोऽ

अहन्तु तान्क्षत्राणां महारथीना परदश-वज्रो-विमर्श-
 तदपेक्षयाऽधिकं भाग्ययस्योऽप्यमीति निश्चिनोमि, यथा
 मार्मिकस्तु सिद्धिहा-मही-महेश्वर, भाग्य-साध्याय-ज
 समाज-मन्त्रीयन, गणमान्य, यशस्य, धन्य-धन्य
 दिग्दायली-विराजमान, राजमानोत्तम, नरोत्तम
 राजधीरमेश्वरसिद्धार्थकर एवास्मि । गार्ग्ये च परदश-
 स्यादि-पण्डित-मण्डल-मण्डना रसास्वादानुहूल-वामन
 न्तःकरणा विद्युप-जनाः ।

नदे] गुनीयो निधाम
 कले-लोटे: दुष्प्रियते कथं मद्रपारि-वदु-येव एव इयामवदु-

लम्-सामटिका-विज्ञ-समगम ।
 गतो "हन् ! वधमप्यापि हन्ती त्रिगुणेन नैवान गृह्यकोति ?
 एवं तद्विनो सद्गुणेन न स्पन्दयति ? कथं पत्नी पत्नेन न पूर्णयति ?
 एवं पत्नी पार्श्वेन पश्यति ? वध हन्ती हलेन नापट्टयति ? कथं
 व जम्भारातिदम्भोलिपानेदम्भेन पत्नानम्भोधि-उल-सम्भा-

नयेत् । "नित्यव्यययोः" न्यायिण्ये द्विवचनम् । आसन्ना समीपवतिनी,
 पार्श्विका = हनुमानः । "अर्धशतमिकादिपञ्चनृपं पृथु" इत्यादिगु
 मशक्तिभिः प्रदुषोऽयं हन्तः, उद्धित इति महासहासवारय-कल्पमान-
 "मानाद्वक्त्रि" प्रत्ययनिधायः "गवर्ह" इति हिन्दी ।

गुह्यो = छिपः, गुह्यकारोति = छिपेन पचति । "गुह्यताके" इति
 शब् । तद्विनो = गुह्यं । पत्नी = विष्णुः । पार्श्वो = वक्त्रः । "प्रचेता वक्त्रः
 पत्नी" तमः । पार्श्वः = वक्त्रस्य अधोवर्त्तमानः, हली = वक्त्रः, अपट्ट-
 यति = विरक्तयेति । जम्भस्य = तन्मात्रोऽगुह्य, अरातिः = विपुः,
 हन्तः दम्भोलोनाम् = वक्त्राणाम्, "दम्भोलिपानेदम्भो" तमः, पार्श्वः =

हकरी की गुनी-बिहमे ठीक पुरी छिपी थी-हाथ में लेकर, कले,
 मुन्दर पने और पुंछुपले बाबो बाबा सौबला बालक, मद्रपारी के
 बप में हो गाँव की ओर चल दिया ।

"हा ! इतना अनर्थ और अर्थ होने पर भी भगवान् रुद्र प्रिय से
 इन अभिमनियों को क्यों नहीं बंध देते ? सद्गुणधारिणों दुर्गा अपने सद्गु
 से इनके दुर्कहे-दुर्कहे क्यों नहीं कर देती ? चक्रपारी विष्णु इन्हें चक्र से
 क्यों नहीं पीस डालते ? वक्त्र इन्हें पाश से बाँध क्यों नहीं देते ? हकप
 चक्रपाम हक से इनकी अवहेलना क्यों नहीं करते ? जम्भ के घातु हन्त
 इन अभिमनियों को घम मारकर समुद्र के चक्रत्वम्भों (एक विशेष
 दान के कारण समुद्र के चक्र का लहे होकर तम्भों का रूप ले लेना)

याहीव सुन्दरकन्या-विक्रय-व्यसनिभिर्यवन-वराहरपट्टियसे ।
भगवदनुग्रहेण च कथं कथमपि मत्कर-मुक्ता पुनः प्राप्यमे । पर
मात्मन ! त्वमेव रक्षेतामनाथां दोना क्षत्रिय-कुमारीन्—इति
सकलं त्रिललाप ।

तदा इष्यं सर्वेऽपि चकिताः स्तब्धाः अभ्रमुस्ताञ्च संतृप्ताः
कुटीराध्यक्षो ब्रह्मचारी च निजमपि किञ्चिद् बन्धु-वियोग-दुःख-
स्मारित इव चाप्य-व्रजोदम-दुर्दिन-ग्लपित-मुखः कथं कथमना
धैर्यमाधाय वदनं पटेन परिमृज्य पुनरवदधे ।

सावत्कुटीराद् बहिः कस्मिंश्चित् कार्ये व्यासक्तो गौरवदुर्बिलापे-
नैतेन कर्णयोराकृत्यमाण इव स्वरितमन्तः प्रविवेश । पौनःपुन्येन

बन्धुवियोगदुःखं स्मारितः—इष्टविरहक्लेशमनुभावितः, चाष्पाणाम्-
अधूणाम्, व्रजस्य = समूहस्य, उद्रेमेन = प्रादुर्भावेन, यद् दुर्दिनम्,
तत्तुल्यम्, “मेघच्छन्नेऽहि दुर्दिनमि” त्यमरः, तेन ग्लपितम् = म्लानम्,
मुखम् = आननम् यस्य सः । अविच्छिन्नाभुधारा म्लानमुख इत्यर्थः ।
अवदधे = सावधानोऽभूत् ।

सुन्दर कन्याओं के व्यापारी यवन दुष्टों के द्वारा कई बार वेग अपहरण
किया गया, पर भगवान् के अनुग्रह से किसी न किसी प्रकार उनसे छूटकर
मुझे प्राप्त होती रही । भगवन् ! तुम्हीं इस अनाथ और दोन क्षत्रिय
कुमारी की रक्षा करना ।”

यह सुनकर सभी लोग चकित और स्तब्ध रह गए तथा उन्हें आँसू
आ गए । कुटी के अध्यक्ष ब्रह्मचारी को भी मानो अपने किसी बन्धु
के वियोग के दुःख का स्मरण हो आया और उनका मुख निरन्तर बहने
वाली अभुधारा से म्लान हो गया । किसी प्रकार धैर्य धारण कर मुँह को
उत्तरीय वस्त्र से पोंछकर वह पुनः सावधान हुये ।

उस कुटी के बाहर किसी काम में लगा हुआ गौर ब्रह्मचारी इस
बिलाप के कान में पड़ते ही अन्दर आ गया ।

गवाक्ष-जालाट्टालिका-द्वग-कपोतपालिका-चत्वर-गोश्र-भिनिष्ठा,

तस्मिन्नेव राजपुराणे उदयपुरनाम्नो काचन राजधानी, यस्या-
 क्षत्रियकुलतिलका यवनराज-यज्ञवदता-कर्म्म-मम्मर्दनं कदाञ्चा-

देवयोनिविशेषा इव । विचित्रा. = विविधाः गवाधाद्या देवु कदशाः ।
 गवाक्षः=वातायनम्, “निदक.” “जरोला” इति हिन्दी । जालम्=
 वायुप्रवेशार्थमार्गः, “जाली” इति हिन्दी । अट्टालिका = प्रत्युत्तिर्निवृ-
 त्तमहासदनम् । अद्वगम् = अबिरम् । कपोतपालिका = काष्ठरचितं कक्ष-
 वासस्थानं विद्वद्म् । चत्वरम् = लक्षणया चतुर्धयबोधकम् । अद्वगता
 पृथगुच्चारणेन नात्र तद्वाचकतेति वेदितव्यम् । गोश्रम्=गोशाल । भिक्-
 =कुक्ष्य येषां ते । विश्वकर्मणा=देवशिल्पिना, रचिता इव = निर्मिता
 इव । सादिकरस्थानाम्=अस्त्रवारहस्तस्थितानाम्, कशानाम्=

=ईपञ्चुभाः । ‘ईपत्पाण्डुस्तु धूसरः’ इत्यमरः । यवनराजवशवदतैव कर्म्म-

के समान हैं । जहाँ के, नाना प्रकार की खिड़कियों, जरोखों, रोशन-
 दानों, अटारियों, आँगनों, कबूतर पालने के दरवा, कबूतरों, गोशालाओं
 और दावारों वाले महल, विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये से लगते हैं
 और जहाँ की सड़के शुद्धसवारों के हाथ को चाबुक से अममाम के
 दिलने से चलने का संकेत पाकर द्रुतगति से दौड़ने वाले घोड़ों के सुर्तों से
 खुद कर उड़ने वाली धूल से व्याप्त हैं । उसी राजपूताना देश में
 उदयपुर नाम की एक राजधानी है, जहाँ के क्षत्रियकुलतिलक राजाओं
 ने, मुसलमान राजाओं की अधीनता रूप काँचड़ से अपने को कभी भी

गवाक्ष-जालाट्टालिकाद्वग-कपोतपालिका-चत्वर-गोष्ठ-विचित्रा,
विश्वकर्मरचिता इव गृहाः, सादि-करस्थ-कशाप-चालन-सङ्केत-मञ्च-
लितसन्नि-समूह-शफ-सम्मर्द-समुद्भूत-धूलि-धूसरिताश्च मार्गाः । कर्त-
तमिन्नेव राजपुत्रदेशे उदयपुरनाम्नी काचन राजधानी, दक्ष-
श्रितियकुलतिलका यवनराज-वशयद्गा-कर्म्म-सम्मर्देन कदाच-

देवयोनिविशेषा इव । विचित्रा = विविधाः गवाक्षा ये टाटाः ।
गवाक्षः=वातायनम्, "विट्टिका" "सोमो" इति हिन्दी । चालन-
वायुपदेशार्थमार्गाः, 'शाली' इति हिन्दी । अट्टालिका = प्रसंगविधिना
मरामदनम् । अद्वगम् = अदिरम् । कपोतपालिका = कागजविषय
वासस्थानं विट्टम् । चत्वरम् = लक्षणया चतुर्भयबोधकम् । गोष्ठ-
इयगुष्माणेन नात्र लक्ष्यकृतेति वेदितव्यम् । गोष्ठम्=गोठानां । विच-
-कृत्स्नं येषां ते । विश्वकर्मणा = देवशिल्पिना, रचिता इव = निर्मित
इव । सादिकरस्थानाम् = अस्त्रधारहस्तस्थितानाम्, कशाप-
मस्तकहनीनाम्, अपस्थ = प्रान्तर, चालनसङ्केतेन = धारनद्वारे
सञ्चालितम् = मञ्चतः, सन्निममूहस्य = वायुनिवारक, शफ-सम्मर्दे-
न = कुटनेन, समुद्भूतानि = उच्छन्नितानि, धूलिभिः = दोभिः, धूसरिता-
= ईष-धूय । 'देवतागुम्भू धूमः' इत्यमरः । यवनराजस्य राजीव कर्म

के समान हैं । जहाँ के, जहाँ प्रकार का विट्टिको, सोमो, मर-
दाना, कागज, अमिनो, कपूर गालने के वरगो, चतुर्भय, गोठ-
और दाना पाठ मङ्कट, विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये थे जहाँ है
जहाँ वहाँ को सङ्केतप्रदान का दाय का चतुर्भय मर-
द्वारे से चले का वहाँ मर-द्वारे से दोहने बाजे को का चतुर्भ-
युद्ध का इतने दक्ष एवं से उद्योग है । इस वायुपदेशार्थ-
मार्ग, चले का चले मर-द्वारे है, जहाँ के चालनकुलतिलका
न, कदाचन मर-द्वारे के वातायन का चले चले चले चले चले चले

पृथिवी निधान

न कन्दूचामानु" इति कथयन्त्येव गौरतन्त्रे: प्रत्ययान्तिगुणवि
 ष्य निधानम्—

"यो न जानीते उदयपुरराज्यम् ? यदीवर्धनपुर-दुर्गे परम-
 त्वा" क्षत्रिय-कुलाग्रना, कमला इव विमला, शारदा इव विशा-
 दा, अनमूया इवानमूया, यशोदा इव यशोदा, नया इव मन्वा;

कमलमन्दैः = लक्ष्मीः । न कन्दूचामानु = न सद्रूपं पशुः ।
 विपश्चरुर्गुणैः = "चित्ते" इ गङ्गा" इति निरुक्तं प्रसिद्धं । केचित्
 यद्यपि यन्त्रादयः मन्त्रे "चित्ते" इ गङ्गा । भगवद्भक्तमद्वैतनन्दव-

यस्य स हि नृसिंहात् उदयपुरीय इति गमयितुं निरुक्तं आद्या तद्विद्वता-
 याम्भुक्तं । अयममद्वैते तद्विद्वताचारम्भु चित्तम् गृह्यते, उरी
 सत्येति भाष्येण "चित्तोरा" इत्यमरवाक्येति चिदित्यम । कमला
 इव = भिष इव । "कमला भार्गविके" इत्यमरः । शारदा = सरस्वती ।

विशारदा = पण्डिताः । शारदा इव विगतशरदेति विशेषभाषः ।
 अनमूया = अविच्छिन्ना । अमूया = गुणैः
 दोषाविष्करणम् । यशोदा = कृष्णमाता । यशोदा = यशोदाविन्या ।

न केवलं पठितवानित्याहमेव कतिरेकेषु अत्र तु तत्तत्तीनामपि ।
 "ध्यानमाहं यथा बालं विद्यादुद्धते बन्दि"ति मानवश्च
 शासनमप्य भवति । सत्या = सत्यभाषाभिधाना भोक्तृपुत्रम्,
 नानिहदेष्टमहन्त्यायात् । सत्या = सत्यभाषिण्यः । अर्शं आचक्षन्तम् ।

कलकित नदी होने दिया । गौरसह ने इतना ही कहा था कि ब्रह्मचारी
 कुछ उष्ण निःधास लेकर, धीरे से बोले,

"उदयपुरराज्य की कीन नहीं जानता ? जिसके चित्तोदुर्ग में हजारों
 क्षत्राजियाँ जो स्वामी के समान निमल, सरस्वती के समान बुद्धिमती,
 अनमूया के समान अविच्छिन्न, यशोदा के समान यश देने वाली, सत्य-
 भाषा के समान सत्य बोलने वाली, इतिमणी के समान स्वर्णभूषणों से

तस्मिन्नेव राजपुत्रदेशे उदयपुरनाम्नी काचन राजधानी, यत्रत्या
क्षत्रियकुलतिलका यवनराज-यशंवदता-कर्दम-सम्मर्दन कदाचन

देवसोनिविशेषा इव । विचित्राः = विविधाः गवाधाया येषु गच्छाः ।
गवाक्षः=वातायनम्, “खिडकी” “सरोखा” इति हिन्दी । जालम्=
वायुप्रवेशार्थमार्गः, “जाली” इति हिन्दी । अट्टालिका = प्रत्ययनिर्नि-
महासदनम् । अङ्गणम् = अग्रिमम् । कपोतपालिका = काठरचितं पक्षि-
वासस्थानं विष्टम् । चत्वरम् = लक्षणया चतुष्पदबोधकम् । अङ्गण-
पृथगुच्चारणेन नात्र तद्वाचकतेति वेदितव्यम् । गोष्ठम्=गोशालम् । भित्ति-
=कुक्ष्य येषां ते । विश्वकर्मणा=देवशिल्पिना, रचिता इव = निर्मित

=ईपक्षुभ्राः । ‘ईपत्याण्डस्तु धूसरः’ इत्यमरः । यवनराजवशंवदतैव कर्दम-

के समान हैं । जहाँ के, नाना प्रकार की खिडकियों, सरोखों, रोशन-
दानों, अगारियों, आँगनों, बबूतर पालने के दरवा, चबूतरों, गोशालाओं
और दीवारों वाले महल, विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये से लगते हैं,
और जहाँ की सड़के सुदसवारों के राथ को चाबुक से अप्रमाण के
दिलने से चलने का संकेत पाकर द्रुतगति से दौड़ने वाले घोड़ों के मुँह से
सुदकर उड़ने वाली धूल से व्याप्त हैं । उसी राजपूताना देश के
उदयपुर नाम की एक राजधानी है, जहाँ के क्षत्रियकुलतिलक राजाओं
ने, मुसलमान राजाओं की अमीनता रूप कीचड़ से अपने को काली नी

सोऽयं स्वलेखनी-कण्डूमुपशमायितुं लिखितः प्रकाण्ड-लेखः
यदि केपाञ्चिन् पण्डित-प्रकाण्डानां कर्ण-कण्डू स्वगृह्येत्; त
कृतवृत्त्यः मन्वसेव । ये तु पुगेभागिनो निर्गीयापि प्रयन्धमसुं तुण्ड
मुण्ड-गण्ड-कण्डूयने; ताण्डव-करण्डीकृत-धूमङ्गेश्वाग्मानाग्मा
काञ्च हासयिष्यन्ति; तेऽप्यसद्वय-प्रणति-वात्राण्येयाम्माकम् । ये
तु जोषं जोषमालोक्यापि काट्यानि, समासाद्यापि च तोषम्, सरोष
मुज्जृम्भिताभिर्जाठरज्वालाभिरेव तं जारयन्ति; जारयन्ति ते
माव्णोऽपि लीडमपि बिषमपि दाषीचास्थीन्यपि चेति विलम्ब
कुक्षयस्ते न कस्य नमस्याः ?

अम्बिकादतव्यामः

तृतीयो निःश्रामः

ने]

न बलदुःखमायुः" इति वक्ष्यन्ते गौरमिदं; ब्रह्मचारिगुरुवर्षि
निःश्रामः—

"को न जानीते उदयपुरमायुः ? यदीय-चित्रपूर-दुर्गे परम-
पुण्याः शशिश-मुखाङ्गनाः, यमला इव विमलाः, शाखदा इव विजा-
रदाः, अनमूया इव अनमूया, यशोदा इव यशोदा, सत्या इव सत्या,

तत्सममर्दः = तत्समः । न बलदुःखमायुः = न तद्वत्पणः पुरुः ।

चित्रपूरदुर्गे = "चित्रं द गद" इति निरुपे प्रसिद्ध । केचित्
"चित्रदृष्टे" इत्यादिप्रसंगे मन्त्रे "चित्रं दृष्टं" इति । भगवत्प्राप्तमद्वतनयव-
यन वा हि भूमिपाल उदयपुरीया इति गमयिनिविषयानाम्ना तत्प्रसिद्धता-
यमनुबुद्धावर्गः । अमरमन्त्रे तर्कप्रमदृष्ट्यायुः चित्तं गृह्णन्, उरो
यमेति स्वयत्पण "चिनोः" इत्यमरादृष्टिरेति वेदितव्यम् । कमला
इव = अपि इव । "कमला श्रीरश्मिरे" इत्यमरः । शाखदा = सरस्वती ।
विजारदाः = पण्डिताः । शाखदा वरं विगतशाखदेति विरोधाभासः ।
अनमूया = अविच्छेद्यः । अनमूयाः = अगुणारहिताः । अमूया = गुणेषु
दोषाविच्छेदणम् । यशोदा = कृष्णमाता । यशोदा = यशोदाविषयः ।
न केवलं पतिप्रतापिन्नासामेव कतिरेकेषु अपि तु तत्पतीनामपि ।
"ध्यात्वा माहो यथा ध्याते विनादुदने बलदि"ति मानवश्च
ज्ञानमयश्च भवति । सत्या = सत्यमाविषयः । अर्श आश्रयणम् ।
नानिबदेष्टमरणवायात् । सत्या = सत्यमाविषयः । अर्श आश्रयणम् ।

कल्पित नहीं होने दिया । गौरमिद ने इतना ही कहा था कि ब्रह्मचारी
गुरु उष्ण निःश्राम लेकर, धीरे से सोने,

"उदयपुर राज्य को कौन नहीं जानता ? जिसके चित्तौदुर्ग में हजारों
श्रीजगिरीयों को लक्ष्मी के समान मिल, सरस्वती के समान बुद्धिमती,
अनमूया के समान अगुणारहित, यशोदा के समान वर देने वाली, सत्य-
माता के समान सत्य सोचने वाली, कविमणी के समान स्वर्णभूषणी"

रुक्मिण्य इव रुक्मिण्यः, सुवर्णा इव च सुवर्णाः, सत्य इव मन्त्रः, सम्भाष्यमान-यवन-व्यात्कार-धिकारोर्जस्वलय-तेजस्काः, योगाग्निनेव पतिविरहाग्निनेव स्वक्रोधाग्निनेव च सन्दीपितासु ज्वाला-जालाञ्जितासु चिनासु, स्मरं स्मरं स्वपतीन्, पश्यन्तामेव स्वकीयानां परकीयानां च क्षणान् पतङ्गतामङ्गीकृत्य, गङ्गाधरस्याङ्गभूषणनाम-गमन"—इति मन्दं व्याजहार ।

तदाकर्ण्य करुणया दुःस्वेन कोपेन आश्चर्येण वैमनस्येन

रुक्मिणी = रुक्मिणी । रुक्मिण्यः = सुवर्णवत्यः । सुवर्णा इव = कनक-पदार्था इव । सुवर्णाः = शोभनवर्णवत्यः । सुन्दर्य इति यावत् । सती = शङ्करदेवता । सत्यः = पतिव्रताः । "सती साध्या पतिव्रता" इत्यमरः । यशोदादिषु व्यक्तिमात्रवाचकेषु बहुत्वं गारुडप्रदर्शनाय, तन्मुखेनोपमानोपमेय-भावनिकांशाय च । सम्भाष्यमानस्य = अनुभाष्यमानस्य, यवनव्यात्कार-स्य, धिकारे = तिरस्करणे, ऊर्जस्वलयम् = कलकत्, तेजो यासा ताः । सन्दीपितासु = सुप्रज्वलितासु । कीदृशाग्निहेतुकं प्रज्वलनमित्युद्देशेन—योगाग्निनेव = योगसामर्थ्यात्समुत्पन्नेनाग्निनेव । पत्युर्विरहाच्चापमानेनैव बहिनेव । स्वक्रोधादुद्भूतइदनेव । ज्वालाजालाञ्जितासु = कोलसन्तूर-समनेतासु । "बह्वर्द्र्योज्ज्वालकं त्यागि" इत्यमरः । पतङ्गताम् = शलभताम् । गङ्गाधरस्याङ्गभूषणम् = भस्म, तज्जावम्, भस्मताम् ।

"पतिर्लोकममीकसन्ता" त्यादिभिः पतिलोकप्राप्तेः फलस्य प्रदर्शितत्वेऽपि शिवधामप्राप्त्याद्यथाऽपि उपलक्षणविधया पदत एवेति मन्तव्यम् ।

अर्चकृत, सोने के समान रगवाली, पार्वता के समान पतिव्रता थीं तथा विनशा नेत्र यवनों के सम्भाषित व्यात्कार को रिकारने में समर्थ या, मानो योगाग्नि, पतिविरहाग्नि या क्रोधाग्नि से प्रदीप्त की गई ज्वालाओं वाली चिना में अपने और परियों के देखते ही देखते, अपने पतिवों का स्मरण स्मरण करने लगीं, पतंग की तरह उड़कर (शकर के शरीर में बन गईं अर्थात्) भस्म हो गईं ।"

नर मुनकर करुणा, दुःख, क्रोध, आश्चर्य, वैमनस्य और ग्लानि से,

मन्या च क्षालित-हृदयेषु निविष्टेषु गौर्गसिह पुन स्व-वृत्तान्तं
वस्तुनूपचक्रमे यन्—

तदा न्यर्म्यमान्यतमो भून्वामो सद्गसिहो नामात्मन्तात-चरण
आमीन् ।

सद्गसिहनाम्ना परिचित इव ब्रह्मचारी समधिकनवाधित ।
स च पूर्ववदेव वस्तु प्रावृत्तन् ।

अम्मजननी तु बालावेवाऽऽवा स्ननन्धयामेव चागमत्सहोदरी
सौवर्गीपरित्यज्य, भुयं विरह्याम्बभूव । अम्मत्तातचरणञ्च कैश्चतु-
रुर्कैर्दुण्ठकप्रादुर्बुद्ध-ब्रीडा घुर्वन पृष्ठतः केनापि विमालमल्लेनाऽऽहूतो

करुणया क्षालितहृदयेस्त्वितिपेण तृतीयान्तपट्कस्य क्षालनेऽन्वयः,
क्षालनशोचचारेण व्यापनार्थकम्, करुणयनिर्वाणनञ्जनाय च तदाधव
णन्, दीपकालङ्कारः ।

समधिकम् = अत्यन्तम्, अवाधित = रीझामन्वभूत् । प्रावृत्तन् =
प्रवृत्तः । स्ननन्धयाम् = पदःशनरताम् । गिष्ठु मेन्वर्थः । विरह्याम्बभूव =
परित्याज्य । तुरुर्कैः = "तुर्क" इति हिन्दी । बीरगां गतिम् = उत्तमं
लोकम् ।

"हादिमां पुरषी लोके सूर्यमण्डलभेदिनी ।

परिषाट् योगयुक्तश्च रणे चान्निमुक्तो हतः ॥" इति श्रुतिः ।

सभी लोगों के हृदयों के घुन (व्याप्त हो) जाने पर, गौर्गसिह ने पुनः
अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया कि, 'उसो राजन के अन्तरिम अवसर
सद्गसिह हमारे विधा थे ।'

सद्गसिह के नाम से परिचित से ब्रह्मचारी ने अपरिचित पडा का
अनुभव किया । यह पहले की ही भाँति कहता गया—

हम दोनों अभी बालक ही थे, और हमारी बहन सीताजी अभी बृष
पति वन्धी ही थी, कि हमारी माँ ने हमें छोड़कर, भूलोक को तिरित प
दिया (मर गई), हमारे पिता जी ने, कुछ टुट्टेरेपुकी से लट्टे टुट्ट, प

वीरगतिमगमन् । ततः पुरोहितेनैव पाज्यामानाशायामपि यन्त्रे
 भ्रान्ते गौर-श्यामी एकदा मित्रः महाऽऽमेष्टार्थं निम्नोत्तुगौ
 चालयन्तो मार्ग-भ्रष्टौ अकस्मान् काम्बोजीय-दम्बु-चारेणऽऽहूतौ
 तेनैवापहत-महार्ह-भूषणौ गृहीताश्चौ बह्वौ च सहैव घनाइनम-
 नायिष्वहि । । “यद्यपि शत्रुसन्ताना निर्दयं हन्तव्या एव; तथाऽपि
 नासा-भूषण-भौक्तिके इव योगा-नुम्याविष इयामकर्ण-इयाविष च
 मनोहर-रूपौ समानाकारौ समानयक-कौ समान-परिणाहौ समान-
 स्वभाधौ समान-स्वरौ समान-गुणौ केवलं वर्गमात्रतो भिन्नौ रान-
 कृष्णाधिबामू गौर-श्यामी बालकौ । तदवश्यं बहुमूल्याविति कुत्रापि

यमलौ = सहजौ । “जुहुवा” इति हिन्दी । मार्गभ्रष्टौ = विन्मृत-
 मार्गौ । काम्बोजीयदम्बुचारेण = कम्बोजदेशीयतस्करसमूहेन । अपहत-
 महार्हभूषणौ = दुष्टितबहुमूल्यालकरणौ । बहुग्रीहिः । अनायिष्वहि =
 नीतौ । शत्रुसन्ताना. = रिपुवंशाः । “वंशोऽन्ववायः सन्तान” इत्यमरः ।
 समानपरिणाहौ = समविशालतौ । वर्गमात्रतो भिन्नौ, ज्येष्ठस्य गुण-
 त्वात् कनिष्ठस्य च श्यामत्वात्]

से, किमी के द्वारा भीषण माले का आघात कर देने के कारण, वीरगति
 प्राप्त की । तदनन्तर पुरोहित के ही द्वारा पाले जाते हुए हम दोनों जुहुवा
 भाई गौर और श्याम, एक दिन मित्रों के साथ शिकार खेलने निकले और
 घोंडे पर चलते-चलते रास्ता भूल गए । अकस्मात् कम्बोज देश के लुटेरों
 ने घेर लिया, हमारे बहुमूल्य आभूषण और घोंडे छीन लिये, और हमें
 बाँध कर अपने साथ वे एक जंगल से दूसरे जंगल ले गए । वे आपस में
 बातचीत करते थे कि, ‘यद्यपि शत्रुओं की सन्तान की निर्दयतापूर्वक हत्या
 कर देनी चाहिये, तथापि ये दोनों बालक नथ के दो मोतियों की भाँति
 कीणा को दो तुम्हियों की भाँति और दो श्यामकर्ण घोंड़ों की भाँति सुन्दर
 रूप वाले हैं । समान आकार, वय, विशालता, स्वभाव, स्वर और गुणवाले
 केवल वर्ण मात्र से भिन्न ये दोनों गौर और श्याम बालक बलराम और

कस्यचिदपि मद्राघनाय हस्ते विक्रयणीयौ" इति तेषां पोरतरान्
मन्त्राणान् शृण्वन्तौ "कथं पलाययहे ? कथं वा मुच्यायहे ?"
इत्यनवरतं पित्तयन्तौ कथं कथञ्चित् कञ्चित् समयमयापयाय ।

अथैवदा कश्चिद्व्यान्ध-सार्यमथलोक्य तल्लुलुण्ठयिषया सर्थे-
त्त्वपि तस्य पन्थानमेवानुमृतेषु आवाभ्यामपि पलायनायसरो लब्धः ।
यावद्धारणं तन्मन्त्रिणः सन्ति ते न विदुः ।

.
F : :

पान्थसार्यम् = पथिव्रजम् । तल्लुलुण्ठयिषया - तस्य पान्थ
सार्यस्य धनापविहीर्षया, परिकरे = गात्रकम्पे । "मवेसरिकरो माते पर्यङ्ग-
परिहारयोः । प्रमादगात्रिकाकम्पे विवेकारम्भयोरपी" इति विश्वः । अस्ति-
पेनुकाम् = घुरिकाम्, "घुरिका चास्तिपेनुके" त्थमरः । बाहुमूले = कसे,
निम्बिदाम् = तद्वम् । आत्मोत्तोलनयोग्याम् = श्रोत्र्यापनाहाम् । सञ्ज्ञाम्
= गौरिकापूर्णां । सिद्धमिति यावत् । उपकारिकाया = पदभवनत् ।
"उपकारोपकारिके" त्थमरः । "तम्बु" इति रिन्दः ।

कृष्ण के समान है । ये अक्षय्य हा बहूमूल्य है, अतः किसी बड़े सेठ के
हाथ इन्हें बेच देना चाहिए, उनकी इस भीषण बातचीत को सुनने हुए,
तथा 'किस प्रकार भगी ? किस प्रकार एटे ?' इसी की निम्नतर चिन्ता करते
हुए, हमने जैसे-जैसे कुछ समय बिताया ।

एक दिन किसी पथिक समूह को आठा देखा, उसे देखते व' हस्ती
से सभी के उसी ओर चले जाने पर हम लोगों को आठने का मौका मिल
गया । करीब परन कर, बरस में घुस दीपकर, दगाव में हाथ लम्पार लटक
कर, उन्ही की बन्दूकों में से अपने योग्य एक-एक छोटा (मरी) बन्दूक
हाथ में लेकर, हम दोनों ज्यों ही सेने के बाहर आये कि हमने देखा कि
कए पहरेदार जिसके हाथ में लम्पार है, हमें बाहर निकलने से रोक रहा है ।

भमाऽऽयाया भृशुगिदहा मन्भायो जम्—“भयमर्त्तं वदतु! दिन-
परायणं वदतु! मन्भायाया दमेदमपि य प्रपत्तिगमि भेत् । अन्त-
परेनपति-पालनं पुत्री-पान्थं विधास्यायः” इत्यादिमन्त्र भवेन इति
भूत नान्येन मूढ-रक्षके, मायि य मयि य दृष्ट-वश्ये विवने; मादिके
नानुमायेन इयाममिहमन्त्रा पन्थोपस्थाप्यायाः प्रान्ते यदानीं फेन-
वन्त्रामभावा कौविद्यमृदेगी इयाम्कणोपाजानेयो वन्दुय,
वन्त्रामायोज्य मयन. मन्त्रीकृत्य पदमायय रक्षकोपरि मुशुगिदहा
तथैव मन्त्रीकृतयान । ननद्यादमयय ह्यमायय नम्य दोरा
मायकोट्य ननयन रक्षकं मायदं नर्त्तनेर्त्तो साहं मृत्प्रायं य विधाय
इयाममिहमाद्वितयान ।

परेनपतिना = यमेन, पालितायाः = रक्षितायाः, पुत्राः पान्थः ।
मूढभावा रक्षकः, तस्मिन् । भवेत काष्ठभूते “हर से काट हूँ”
इति भाषावाम् । किञ्चिदकुवाणः कोलाहलमपि नाकायादिति मूढवन् ।
फेनवर्षिणाम्, भोजनकालोपरिष्ठात् मुक्तोपविष्टाः फेनं वनन्त्यश्च इति
स्वभावः, आज्ञानेयो = कुलीनौ । “द्यन्निर्निर्दिष्टदयाः स्वतन्त्रं पदे
पदे । आब्रानन्ति यतः संस्थाभाजानेवास्ततः स्मृताः ॥” इत्यश्वशालम् ।
तज्जने = मर्त्तनैः । इङ्गितवान् = चेष्टया बोधितवान्, गन्तुमिति शेषः ।

हम दोनों ने बन्दूक तान कर कहा, ‘धम, बस, नीच ! यदि कुछ भी
अधिक बोला, या उस जगह से एक कदम भी चला तो यनपुरी का
अतिथि बना देंगे ।’ यह सुनकर वह पहरेदार दर से काट हो गया, मैं
बैठे ही निशाना साधे खड़ा रहा, मेरे इशारे के अनुसार दयामसिंह ने उसी
थिन के पास बैठे, फेन उगल रहे घोड़ों में से दो शीघ्रगामी, अच्छी बालि
के दयामकर्ण घोड़ों को खोलकर, लगाम लगा कर, उन्हें सब तरफ से मुनत्रित
कर, एक पर चढ़कर, उस पहरेदार पर उसी तरह बन्दूक तान ली ।
क. बाद मैंने भी दूसरे घोड़े पर बैठकर उसकी गर्दन धपधप कर,
उसे नचाते हुए, धमकियों से पहरेदार को निरुत्साहित और अधमरा ल
कर के, दयामसिंह को चलने का इशारा किया ।

अथाऽऽवांद्वावपि वायुवेगाभ्यामश्वाभ्यामहातेनैवापधा, उपत्य-
कान् उपत्यकाम्, घनाद् घनम्, शान्तराज्यं शान्तरमुल्लङ्घ्यमानौ तेनैव
दिनेन गज्यूनि-पञ्चकं प्रयातौ । सायं समये च कार्मापि प्रामटिका-
मासाद्य अन्यतमस्य गृहस्य द्वारं गतौ । तत्र च हनुमन्मन्दिरमवगन्त्य
तस्मिन् प्रविष्टौ तदप्यक्षेत्रं केनचिन् साधुना च सम्वागतमापदेण
धासितौ, तत्रैव निवासमकृष्वदि ।

अथ तत्पदनमेव हनुमत्प्रसादीभूतं मोदवादि समाग्याद्य, तस्यैव
मृत्पेनाऽऽनीतं यवस-भारं याजिनोरमे पातयित्वा, मन्दिरस्यैव
वर्षिषोदकायामितमन्तः पर्यटन्तौ मुहुर्त्तमावाभवास्थिष्वदि ।

तत्र च दुग्धधाराभिरिव प्रथमं प्राची संक्षाल्य, भसितउत्तुरि-

अपधा=कुमानेण, प्रान्तरम्=दूरस्थो मार्गः । “प्रान्तर दूर-
स्थोऽप्ये” त्वमरः । “प्रांतर” इति हिन्त् । धासितौ=स्थासितौ ।
यवसभारम्=वातभारम् । अवाभिष्वदि=स्थितौ, “समवप्र-
विश्यः स्थ” इत्यात्मनेपदम् ।

तत्र च समुदिने चैत्रचन्द्रानन्दे परितो दृक्गतमकार्यमिति सम्बन्धः ।

हम दोनों हवा के समान तेज उन चोटी से, अनजाने रास्ते से ही,
उपत्यका से उपत्यका, एक जगह से दूसरे जंगल और एक उखाड़ मार्ग
से दूसरे उखाड़ मार्ग होते हुए, उसी दिन इस योग निष्कल गए । शाम
को एक छोट्टे-से गाँव में पहुँचकर वहाँ के एक अच्छे घर के दरवाजे
पर गये । उसे हनुमान का मन्दिर जानकर, उसमें घुस गए । उसके
अप्यथ साधु ने स्वागतार्थक मागह इन्ने वहाँ रखा और हम वहाँ रह गए ।
मन्दिराप्यथ के हाथ दिये गये हनुमानजी के प्रसाद के लड्डू आदि
खाकर, और उन्हीं के नौकर हाथ लाई गई पास की चोटी के आगे
बाल कर, मन्दिर के बाहर के खजूरों पर इधर उधर घूमते हुए, हम
बुल धन दके ।

तदनन्तर, परले प्रायो दिशा की मानो दुग्धधाराभी से धोकर,

तृतीयो निश्वासः

रामरक्तन-शाणोल्लीट-निर्मिशो इव च समुदिते चैत्र-
 तन्त्रकाशेन स्फुटं प्रतीयमानासु सर्वासु दिक्षु, अहं परितो
 कायम् । अद्राक्ष्यन्न यदुत्तराभिमुखम्, तद् विशालं मन्दिर-
 द्वारस्योभयतः सुधालिप्त-भित्तिकाया विशाले मन्दूराक्षरे-
 'रामदूतो विजयनेतराम्' 'विजयनामक्षध्वकारी'-
 नि वाक्यानि गदादि-चिह्नानि च लिखितानि सन्ति । नन
 मिह स्वल्पः शैलरण्डः, पूर्वस्या गहनं वनम्, पश्चिमाया च
 मेढं पञ्चलमासीन् । यद्यप्यसौ पर्वत-रण्डो नात्यन्तं भयानक
 तथाऽपि विधिभागण्डशैलावृतः, प्र - रमर - ध्वनि - पूरित-

हं = दिग्गजकालण्डे । समीनिमिरकर्तनाय = सम्पन्नकारनाशाय ।
 नन = वनेषु, उल्लीटं = तेजिते, निर्मिशे = लहने । यपरि लहगथा-
 मतावर्णनमेव कविसमयव्याप्यनुकूलम्, तथापि शाणोल्लीटत्वस्य
 मत्कृतिविशेषापायकत्वेनेह इत्यमभिहितमिति चेदित्यम् । प्रनीया-
 नानामु = हृदयमानामु । सुधया = पूजेन, "पूना" इति हिन्दी,
 निताया भित्तिकायाम् । अतिशयेन विषयते विजयनेतराम्,
 "निहन्ते" तपि "किमेतिहभ्यवे" त्याम् । पर्वतलम् = भस्मोदक

भंडुर के समान और लोगों की आँखों के लिए बरफ के समान चंद्रमास
 के बालचन्द्र के उदित हो जाने तथा उसके प्रकाश से सभी दिशाओं
 के सब दृष्टिगोचर होने पर होने वाले और दृष्टिमान किया
 और देखा कि उत्तराभिमुख को विशाल मन्दिर है, उसके मुख्य द्वार के
 दोनों ओर, पूने से दुरी हुई दीवारों पर, बड़े-बड़े अक्षरी हैं, मन्दिर से
 'यपति इनुमान' 'रामदूतो विजयनेतराम्' 'विजयनामक्षध्वकारी' इत्यादि
 अनेक वाक्य और मल आदि चिह्न अंकित हैं । उस मन्दिर के उत्तर एक
 छोटी-सी पहाड़ी, पूर्व में, बना उगल और पश्चिम की ओर एक ठंडा गल
 ताण्डव था । वह पहाड़ी बर्तन बहुत भयानक ही नहीं था, निरभ
 पहाड़ी से चिरी, राजा की तरफ लपकि से दिसाई की दृष्टि करने

दिगन्तरालः, महीन्द्र-समूह-समावृतः, उवाच-सानु-प्रचय-सूचित-
विविधकन्दरश्चाऽऽसीत् । चन्द्र-चन्द्रिका-चाकचक्यान् स्फुटमवा-
लोक्यन्तैतस्योपत्यकाः ।

ततश्च शिल्ली-शङ्कारेणैव केनचिन् विलक्षणैः अनादृत्यनिनेव
पय्यंपूर्यंत यमुधा, विचित्र एष कश्चन परस्मद्भ्य-सानुपूर-यद्भ्यन्वर-
सोदरो वन-रात्रि-ध्वनिः, तमेव स्वरं गम्भीरं विशकलप्य आकण्ठ्यता
समभ्रावि कीचकध्वनिरपि, तत्रायवदधता साक्षादकारि मधुकर-

मरः । शरम्य = वायिवाहस्य, “वायिवाहो निशंरो शर” इत्यमरः,
शरंरध्वनिना पूरितानि दिगन्तरालानि यस्य सः महोरुहाणाम् = उवाचानाम्,
समूहेन समावृतः = आच्छन्नः, अतिवर्नीभूतश्चक इति भावः । उवाच-
चानाम् = निशोन्नतानाम्, सानूनाम् = अद्रिनिवन्तानाम्, प्रचयेन =
समूहेन, सूचिताः = प्रकटकृताः, विविधाः = अनेकाः, कन्दर यस्य सः ।
चन्द्रचन्द्रिकाचाकचक्यान् = श्योलनादासैः ।

शिल्ली = मृद्गारा, तस्या शङ्कारेण । उवाचद्वया स्वनति शिल्ली प्रा-
दृष्टाये । विलक्षणैः = विचित्राद्यैः । अनादृत्यनिना = अवयवशब्देन,
इवेन तुल्यत्वेन । वायविकोऽनादृत्यनिस्तु योग्यमप्य एव । परस्मद्भ्य-
णाम्, तानपुण्ण यः यद्भ्यन्वरः, तन्मोदरः = तन्मोदः । विशकलप्य =
विविध । कीचकध्वनिः = वेगुभित्तपञ्चजः । “वेगवः कीचकारी सुते
स्वनध्वनिसोऽयम्” इत्यमरः । समभ्रावि = भुवः । अवदधता = स्थानं ददता

बायी धीरे श्रुती के समूही से स्थान या तथा उसको ऊँचे-नीची चोटियों
उसमें अनेक कन्दराओं के होने का सूचना देती थी । बाँझों की चयक
में हमका लक्ष्मी के ऊँचे-नीचे भाग भाग दिखाते पड़ रहे थे ।

उसके बाद, शिल्ली को सारा के समान किसी अनादृत्यनि को-
नी दिखाना ध्वनि से पूरा पूर्ण हो उठा । इसी मानसों के चर-
स्व के स्थान, वनध्वनि को वर ध्वनि विविध थी । उसी गर की
लक्ष्मीमूर्ति के निवेदन का हे करने पर कीचक की जनि भी ध्वनि हो ।

ॐ धोः ॐ

शिवराजविजयः

गद्यकाव्यम्



“विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितजगत्”
“हित्यः स्वपापेन विहितः सलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते” ।
—भागवतम् ।

वागीश्वर्यै नमः ।

शिवादे स्वेतन्ती शिवशिरमि गङ्गालहरिक्र
ममुघट्टभीरुध्वनिभरसमुद्गपितमदाम् ।
निरीक्ष्योत्का यामा सरलहृदयाऽऽवृणितयती
यमासेष्यै देवं तमिह कलये वित्तनिलये ॥

शिवराज-विजय का हिन्दी अनुवाद

स्पर्शेनैव मनोभुर्वाह जनिता रोमाञ्चरूपाङ्कुराम्
यत्नैर्जातमनोज्ञघोरनुदिनं पत्रादिभिर्गदिताम् ।
तां पाणिपहणाद्विरेव समये मिसा, प्रमात्पुष्पिताम्
स्निग्धा स्नेहलता स्मरामि गिरिजाकेदारयोः प्रीतये ॥ १ ॥
गहनदशनशाखमहाजलोदधिनिमज्जनकौतुककरिणी ।
सरससंस्कृतकाव्यमुधाम्बुधि समवगाहन्तु मेऽयं सरस्वती ॥ २ ॥
शिवराजत्रयं नाम गद्यकाव्यमनूद्यते ।
केदारनाथमिथेण छात्रेभ्यो राष्ट्रमापया ॥ ३ ॥

वन्य-पतत्रिणां स्थगित-मन्थराऽऽरावाः समाकर्णितम् । अथानुभवत-
धीर-समीर-स्पर्श-सुखम्, साम्रेडमवलोकयंश्च तारकितं नभः, स्मारं
स्मारं स्वगृहस्य, महाचिन्ता-पारावारे इवाहं न्यमाङ्क्षम् । ततः पृष्ठतो
भित्तिकामाश्रित्य, करी कटि-प्रदेशे संस्थाप्य, साम्मुखीन-शिखरि-
शिखरे चक्षुषी स्थिरयित्वा, आत्मानमपि विस्मृत्य व्यचारयं वन—
अहह ! दुरदृष्टोऽस्मि !! धन्यावाक्योः पितरौ; यौ सुखिना-
वेवाऽऽवां परित्यज्य दिवं सनाथितवन्तौ, न तयोरदृष्टे पुत्र-विश्लेष-
दुःखं व्यलेखि धात्रा । नितान्तं पापिनी चाऽऽवाम्; यौ बाल्य एव-
दशीषु दुरवस्थासु पतितौ । का दशा भवेत् साम्प्रतमाक्योरनुज्ञायाः

पूजितम् = सत्कृतम् । स्थगितमन्थराः = मान्धर्वान्याः । ताराः शंका-
श्चेत्यर्थः । आरावाः = शब्दाः । समाकर्णितम् = श्रुताः । कर्मणि स्ने ।
तारकाः सञ्जाता अस्मिन्निति तारकितम् = उद्गमणसमेतम् । “तदस्य
संजातं तारकादिभ्य इतच्” । स्वगृहस्य, “अधोगर्धदयेशां कर्मणा” ति षष्ठो ।
महतीना चिन्ताना पारावारे = समुद्रे । न्यमाङ्क्षम् = निमग्नोऽभवम् ।
करयोः कटिप्रदेशे संस्थापनं चिन्ताधुद्रा । साम्मुखीनशिखरिशिखरे =
पुरोवर्तिपर्वतशृङ्गे । आत्मानमपि विस्मृत्य, विचारेकतानताप्वननायेदम् ।
लोकोक्तिरेषा ।

होने वाले स्वर सुनाई दिये । तत्पश्चात् धीरे-धीरे वह रही हवा के स्पर्श
के सुख का अनुभव करता हुआ, तारीं भरे आकाश को बार-बार देखता
हुआ और अपने घर की याद करता हुआ मैं चिन्तासागर में डूब गया ।
किर दीवार से पाँठ टिका कर हाथों को कमर पर रखकर, सामने वाले
पर्वत की चोटी पर आँखें टिकाकर, अपने को भा भूल कर, मैं सोचने
लगा, —“हाय, मैं क्या ही अभागा हूँ । हमारे माँ-बाप धन्य थे, जिन्होंने
हम दोनों को सुखी छोड़कर स्वर्गलोक को अलङ्कृत किया । उनके भाग्य
में विधाता ने पुत्र विधोग का दुःख नहीं लिखा था । हम दोनों महापापों
हैं जो बचपन में ही ऐसी दुर्दशा में पड़े हैं । इस समय हमारा बहिन

देवताः । इत् ॥ इत् भाग्या स बाहिका; वा अस्मिन्नेव वर्तसि
 तिन्नां परित्यक्ता, आवयोरप्यदर्शनेन कन्दने कण्ठं कदर्थयति ।
 इत् ! सततमस्मत्कोटिक-कोटनिकाम्, सततमस्मन्मुखचन्द्र-चक्रो-
 त्ति, सततमस्मत्कण्ठ-रत्नमालाम्, सततमस्मत्सह-भोजिनीम्,
 इत्यनुवृत्तिः, मधुर-मधुरैः, सुधा-स्यन्दनैः, दाद-दादित-भाषणैः
 नागोदरं हस्तीम्, क्षणमात्रमस्मदनबलोकनेनापि वाज्य-
 प्रादः करोती मलिनयन्त्रोम्, कथमेना वृद्धः पुरोहितः सान्त्व-
 यति ? अस्मज्जनकापिशेपः पुरोहित एव वा कथं न विना
 विप्यति ? परमेश्वर ! तथा विवेहि; यथा जीयन्तं वृद्धं पुरोहितं
 विषीं साक्षात्तुवः—

कन्दनैः = रोदनैः । “कन्दने रोदनाकाने” इत्यमरः । कदर्थयति =
 इच्छति, अस्मत्कोटमेवेकं कीदृशकम् = खेलसाधनम्, “खिलोना” इति
 शिलो, यत्नास्ताम् । अस्मन्मुखचन्द्रस्य चकोरीम्, चकोरी यथा चन्द्रमसे
 निवर्तति तथैव सास्मन्मुखम् । सुधास्यन्दनैः = अमृतपसरणैः,
 दाद-दादित = “ठाठ ठाठ” इति संस्कृतम्, तद्वर्णनः । प्राकृते दाद-
 दादिति । अस्माकम्, जनकापिशेपः = मित्रुत्स, जो = भाषाम् । “द्वि-
 त्वे मे दृष्टे मी-वाप ने छोट दिया और हम दोनों को भी न पाकर, ये-
 भी, जो चकोरी को भी छिपे सदा हमारे ऊँर की ओर ही देखा करती थी,
 जो हमारे गले की रत्नमाला है, जो हमारे हाथ की लाली थी, बचपन
 की सुधावर्षिणी तोतली और मधुर बोली में ‘दाद ! दाद ! (ठाठ ! ठाठ !)’
 कर कर हमारा मन हलके बालों, छप भर भी इसे न देख जाने पर
 अँगुली से गाल को पीका कर देने वाला उस कोरणा को इन् पुरोहित
 सान्त्वना कैसे देते ? अथवा हमारे गिर के समान पुरोहित ही हम दोनों
 के भ्रष्टा से कैसे जी सके ? परमेश्वर ! देखा करो कि हम बंदिग
 की शोका से किन सके ।”

इति विन्ता-चक्रमान्द्र एव आत्मनं विस्मृत्य भित्तिका
एव शनैरस्थलम् । प्राप्तसंज्ञश्च समपश्य यन् श्यामसिद्धो मति
पूजकाश्च मानु थापयन्ति—इति ।

अथाऽऽवां तेन साधुना मन्दिरस्यान्तर्गतो महावीर-
समीपे चोपवेशितो ।

तवाऽयलोक्य तां यद्येणेव निर्मिताम्, साकारामिव वीरताम्
गदामुद्यम्य दुष्ट-इल-इलनार्थमुच्छलन्तीमिव केशरि-किशो-
मूर्तिन्, न जाने कथं वा कुतो वा किमिति वा प्रातरन्धकार इ-
व सन्ते हिम इव बोधोदयेऽबोध इव ब्रह्मसाक्षात्कारे भ्रम इव च
सदित्यपससार आवयोः शोकः । प्राकाशि च हृदये यद्—

चतुर्थीद्वितीयास्थवोवांनावी” इत्यनेन नावादेशः, “पृथग्विनानानामित्यु-
यान्यतरस्यामि” ति समुचयाद् द्वितीया । सौवर्णीम्, चं विनाऽपि छन्दस-
“गौरवः, पुरुषो हस्ता शङ्कुनिर्मगो ब्राह्मण इति” ति भाष्यादनुमीयते ।

भित्तिकासंसक्त एव=कुड्यसंलग्न एव । शनैः=अ-
अस्थलम्=अपतम् । प्राप्तसंज्ञः=प्राप्तचेतनः ।

यद्येण=इन्द्रायुधेन । साकाराम्=शरीरधारिणीम् । केशरि-किशो-

इस प्रकार विन्तामस्त होकर मैं अपने को भी भूल गया और दीवार
से टिका हुआ लुडक गया । होश में आने पर मैंने देखा कि श्यामसिद्धि
और मन्दिर के पुजारी मुझे उठा रहे हैं ।

उसके बाद वह साधु हम दोनों को मन्दिर के अन्दर ले गया और
हमें महावीर की मूर्ति के पास ही बिठा दिया ।

तदनन्तर, वज्र से बनी हुई-सी, साकार-वीरता-सी, गदा उठा कर
दुष्टों के संहार के लिए उछल-सी रही उस हनुमान की मूर्ति को देखकर
न जाने कैसे, प्रातःकाल के समय अन्धकार की तरह, वसन्त ऋतु में हिम
की तरह, शान हो जाने पर अज्ञान की तरह और ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाने
पर भ्रम की तरह, हमारा शोक दूर हो गया, और हमारे हृदय में एक
प्रकार के भाव उठे कि—

कुलोयो निश्वासः

]

“अहं बहुना चिन्ताभिः ! कश्चन पुरुषार्थः स्वीक्रियताम्, न
 सुदृष्टतां यदावामेव दुरदृष्टवशान् त्यक्त-कुदुम्बो यने पर्व-
 व-इति, किन्तु कोशलेभरतनयो राम-लक्ष्मणावपि चतुर्दश-
 शतं यावद् दण्डकारण्ये भ्रान्तवन्तौ ।”
 ततः साधोश्चरणयोः प्रणम्य मयोकम्-भगवन् ! नात्यविदितं
 किमपि भवादृशानां सदाचार-दृढप्रतिनाम् । तदकार्यता किमावां
 करवाव ? कुलो गच्छाव ? कथमापयोः श्रेय-सम्पत्तिः स्याद् ?
 इति ।

ततो हनुमत्पूजकेन सर्वमरमदृष्टान्तं पृष्ट्वा ज्ञात्वा च काष्ठ-
 पट्टिकायां पृथोन्मथित-सिन्दूरेण किमपि यन्त्रमिषोल्बिष्य, चन्दनैः

रम्य = केशरितनयस्य, नूर्तिन्, हनुमत्प्रतिमाम् । स्रष्टित्यपससार शोकः,
 रम्येन मूर्तिपूजाकरस्यम् । हनुमदर्थनेन रामलक्ष्मणस्मरणं तपोभ स्मरणेन
 नवासाधनानाम् । प्राकाशि-सुरितम् ।

श्रेय-सम्पत्तिः = कल्याणावाप्तिः । काष्ठपट्टिकायाम् = टाव पत्रके ।
 “अहं की पट्टी” इति हिन्दी ।

पृथेन-कर्षिता, उन्मथितम्-मैलितम्, सिन्दूरं तेन । “महादेवी”

‘अब अधिक चिन्ता न करके कोई पुरुषार्थ स्वीकार करो । यह मत
 लोगों कि हम ही दुर्भाग्य क्या घर-घर छोड़ कर जंगलों में भटक रहे हैं,
 रमरम के पुत्र रामलक्ष्मण भी चौदह वर्ष तक दण्डक वन में भटकते
 रहे थे ।’

उसके बाद उस छात्र के परणों में प्रणाम कर मैंने कहा ‘भगवन् !
 सदाचार गत का दृष्टा से पालन करने वाले आर्य के-से महापुरुषों से
 कुछ भी छिपा नहीं है, अतः बताइये कि हम दोनों अब क्या करें ? क्या
 करें ? हमारा कल्याण देखें होगा ।’

उसके बाद उस पुत्रापी ने हमारा छात्र पूछा-उठ जाओ वहाँ जान
 जाओ, वहाँ की पट्टी पर पृथिविमित सिन्दूर (महादेवी) से एक वन्द-

मंचर्य, तुमुमेगादीयं, प्रेम प्रपञ्च-रा, हिमनि क्षुभे आनन्दे न
मम हर्षे प्रगोष्ठमेकं ररवा, "कम् ! अनेमन् यन्त्रे कर्मिन्त्रे
कोत्रे यथाशक्ति अनुकल्पमिदं प्यारय" इत्यशक्ति । तत्र एतन्ने
कोत्रे निर्दिष्ट-अमुकं मायि मुहूर्तम् अङ्गुष्ठपरं गुह्यमिदं गन्तव्यं
स मामराशीन्—

कस 'कदाचित् मा मम गमो गृहं प्रति, यतो मार्गे पर्यवर्तते
अरण्यानां पुत्र पश्य काम्योजोया यवन-दम्पत्यो भवतोर्विद्वत्
विचरन्ति । दम्पति-प्रियाममभिहारेण चक्षुःकम्यमानं देशन-
लोभ्य भयदूषामयामिनः सर्वेऽपि एवं स्वमाष्टवं पारिवन्
इत्यस्त्वो गताः ।

ततः 'सीरन्ति ! सीरन्ति ! पुरोहित ! पुरोहित !' इति सङ्घोर्न
व्याहृतवतोरावयोः पुनः स साधुत्वोचन्, यन्—

इति हिन्दी । अन्तर्प्रदेवन् । अङ्गुष्ठपरं गुह्यमिदं ।

मास्म गमन्ना यदि । अरण्यानां पुत्र-हरण्ये ।

सा बना कर, चन्दन, पुष्प और पूर से उसको पूजा कर, छन नर दुर्ग
प्यान-सा करके मेरे हाथ में एक मुगरी देकर कहा, 'कल ! इस मुगरी
को अन्नो इच्छादुसार इस यन्त्र के किता कोष्ठ में रख दो ।' इसके पद
मेरे एक कोष्ठ में मुगरी रख देने पर, छन नर उँगुठिचों के कोठे पर दुर्ग
गिनता हुआ-सा वह मुहसे बोला—

'कल ! पर का ओर कदापि न बना, क्योंकि एल्ले ने पर्वतों को
पाथियों और बज्रलों में बहुत-से कम्बोज देश के वन दुहरे दुहरे पर्वतों
के छिद्र पूर रहे हैं । दम्पती शयन स्वदेश पर निरन्तर आक्रमण होय
देख तुम्हारे गवि के सभी निवासी अन्न-अन्न पर छोड़कर इतर-उपर
चले गये हैं ।

इसके बाद हम दोनों के मुख्य होकर, 'सीरन्ति ! सीरन्ति ! पुरोहित !
पुरोहित !' यह कह उठने पर वह साधु छिर बोला—

पृथीषो निधामः

होईषि बुध्मश्रुतादिनिधि कचन सकेनित-भूमि-मुदरे
वा, परा धात्री दास-चतुष्टयमेकं चादयं सह नीत्वा महा-
शान्त-परिपूर्तिता कोट्भूमि-भूमि प्रति प्रस्थितः ।
दाकलप्य, "सत्यं सत्यमेवमेवम्" इति समानकान्दोलन
उच्यते पुरोहितैः; 'वतस्ततः' इति सुखरीभूतेषु च कुटीरस्थ-

उ-जनेषु, भूयस्वदुक्ति व्याग्रह गौरसिंहो यद्—
न शोचनीयं भयङ्गया किमपि तयोर्विषये, गन्तव्यं च तन्मित्रेव
मयोदाधिष्ठिते गिरि-गरिष्ठे कोट्भूमेऽपि । क्रियत्समयानन्तरं तत्रैव
संगत्या पुरोहितेन च सह साक्षात्कारोऽपि भविष्यतीति प्रावोचत् ।

संकेतितभूमेः मुदरे=विषये । "कुरर गहरं उद्रे म्नीवं नागान्तरे
पुराणि" ति कोषः । धात्रीम् = उपमावत् । "धात्री स्वादुपमाताऽपि
विशिष्टायावलक्षणा" स्वमतः । महापद्मा एव पद्माननाः = सिद्धाः,
तैः परिपूर्तिताम्=भरिताम् ।
सदुत्तमम्=नूतनतूतकोक्तिम् । अविद्ययेन मुक्तगिरिष्ठं, निर्दिमार्गिष्ठ-

सन्ति ।

पुरोहित भी पुत्राये स्नादिक निधि को किसी संकेतित स्थान पर
गाढ़ कर, एक पाय, चार दास और एक घोड़ा साथ लेकर महापद्म-
केसरी शिवाजी के कौंकणग्रदेश की ओर चले गये हैं ।
यह मुनकर, पुरोहित के सिर दिखाकर 'सब है, ऐसा ही है' कह कर
स्वाकार करने और कुटी के सभी लोगों के 'फिर क्या हुआ' यह पूछने पर
गौरसिंह उस पुत्राये के कचन को पुनः कहने लगे—
"आप दोनों को उन दोनों के विषय में कोई बिज्या नहीं करनी
चाहिये और शिवाजी से उचित पर्वतबहुल कौंकणग्रदेश को चला जाना
चाहिये । कुछ समय बाद अपनी बहिन और पुरोहित से मुद्रास साक्षात्कार
होगा, ऐसा ठह पुत्राये ने कहा ।"

ततस्तु धनम-सङ्कारेणैव “अहो ! अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यम्,
धन्यो मन्त्राणां प्रभावः, धन्यमिष्टयलम्, चित्रा धर्मनिष्ठा, अविन-
क्यस्तप प्रतापः, चिह्नभूषणा नेष्टिकी शक्तिः” इति मन्त्र-न्यस-मेदुरेण
धोतृजन-न्यचन-कलापेन संकृते तस्मिन् निकुञ्जे; “ततः कथं प्र-
लितौ ? कथमग्राऽऽयातौ ? का घटना घटिता ? क उपायः कृतः ?
किमाचरितम् ?” इति कुनूहल-परवशे विस्फारितनयने उद्ग्रीवे
समनुकूलितकर्णे विस्मृतान्यकथे कृतावधाने च परिकरवर्गे दयाम-
सिंहस्याके दत्तदृष्टिसौवर्णी तदङ्गे सस्थाप्य, पातितोभयजानु सङ्-
पविश्य, राजत-राजिका इव कपोलयोरुत्तरोष्ठे च समुद्भूताः

अहो ! अहो, “ओत्” इति प्रशस्त्रमंशा ततश्च प्रकृतिभावः । कुनूहलपर-
वशे=कीतुकाधाने, विस्फारितनयने=विकासितनेत्रे । शुभ्रातिरेकदिशं
सर्वम् । उद्ग्रीवे=उत्थितकण्ठे । समनुकूलितकर्णे=अभिमुखीकृतश्रोत्रे,
विस्मृतान्यकथे=त्यक्तान्यममन्त्रे । पातितोभयजानु, क्रियाविरोधम् ।
राजतराजिका इव=दोर्वर्णकणिका इव ।

तदनन्तर, भीरी की गूँज के समान, ‘अहो ! अहो ! आश्चर्य ! महान्
आश्चर्य ! धन्य है मन्त्रों का प्रभाव और धन्य है इष्टदेव की शक्ति !
धर्मनिष्ठा कितनी आश्चर्यजनक है ! तप का प्रताप कितना अविनश्य
है ! ब्रह्मचर्य शक्ति कितनी बिलक्षण है !’ ओताओं द्वारा मन्त्र स्वर में
कहे गये इन वाक्यों से उस निकुञ्ज के गूँज उठने और फिर ‘आप
दोनों कैसे चले ! यहाँ कैसे आये ! कीन-सी घटना घटी ? क्या उपाय
किया ! क्या किया !’ यह जानने को उत्सुक होकर पास में बैठे सभी लोगों
के आँखें पाड़ कर, गर्दन ऊँची करके, कान लगा कर, अन्य सारी बातें
भूल कर सावधान हो जाने पर, दयामसिंह की गोद की ओर देख
रही सौवर्णी को उसकी गोद में बिठाकर, धुटनों के बल बैठकर, दोनों
गाँवों और ओष्ठ के ऊपर की चाँदी के कणों के समान पसीने की बूँदों

अस्य गव प्रकाशः पूर्णः । भगवतो मनीषिमाश्रितः । ॥

तत्र भगवते कविषु मन्त्रकर्मणि गिरमस्य । काश्चिद्विज्ञानाभासो वीर्य-
प्रधानं गवत्कायं निर्बर्तुमर्हन् परमसौ भाग्यभाग्येवम् दुर्लभो रत्न-
विज्ञोऽसादनदुर्लभस्य क्षिप्योऽस्य भवितव्यमेवेति भाग्यता वृत्तार्थविशेष-
विहितमनोरथ उपक्षिप्यति वेदगातोऽपि भवितव्यतादुरूपताम्-विष्णोर्मा-
येति । वेवेति एव प्रोचति चराचरात्मकं प्रत्ययमिति विष्णुर्ज्ञानं, तस्य माया =
सत्यप्रधानः शक्तिविशेषः । सा चेवा भगवतो = समप्रपन्नगुणगन्धमा ।

ऐश्वर्यस्य समप्रपन्न घर्मस्य यशस्य भिषः ।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैव यस्या भग इतीरणा ॥

इति प्रसिद्धो भगवदर्थः—तद्वत्तस्य भगवत्त्वम् । यदा = मायया ।
गच्छतीति जगन् स्यावस्थाप्युपस्थगम् । सम्मोहितम् = मय्यप्रवेश-
मोहितम् ।

हिंस्रः = घातुकः । खलः = दुष्टः । स्वस्यैव पापेन विद्विषितो भवति,
ननु तत्र निमित्तान्तरापेक्षा । साध्नोति परकार्यमिति साधुः । तथाभूतश्च
समत्वेन = विवेचकत्वेन । भयाद्विमुच्यते = अपगतभया भवति । तत्रापि
तस्य समत्वमेव हेतुर्न वीजान्तरापेक्षा । तदुक्तम् “न कर्तृत्वं न कर्माणि
लोकस्य सृजति प्रभुः” इति । एतेनाऽऽयनिश्वासे परिणामशोभनाः माधूनाञ्च
शोभना आचाराः प्रदर्शिता भवेयुरित्युपक्षिप्तम् । सर्वश्रेष्ठं सर्वतन्त्रस्तत्तन्त्रस्य
भगवतो मायया त्रिगुणात्मिकया निर्वर्द्धरेव समास्थायित इति, काचन

भगवान् विष्णु की माया, जिसने सम्पूर्ण जगत् को मोह में डाल रखा
है, सकल ऐश्वर्यशालिनो है ।

दुष्ट हिंसक अपने पाप से ही मारा गया और सज्जन अपनी समत्वबुद्धि
के कारण भय से बच गया ।

पूर्व दिशा में भगवान् सूर्यदेव की यह लाटिमा है । यह भगवान्

वित्तिरी न तरोरवनरति । आलोकाऽऽलोक-कृत-किञ्चिच्छोकमोक्षे
ऽपि च कोक्षो न वराकी कोकीमुपसर्पति ।

अथेशीमेव मनोहारिणी शोभाम्बलोकयन्ती कम्पितकुन्द
कलापस्य, उन्मीलन्मालती-मुकुल-मकरन्द-चारस्य पाटलि-पटल
पराग-पुञ्ज-पिञ्जरितस्य शनैः शनैः फरफरायमाण-शुक्ल-पिक्वादि-
पतगोन्मथ्यमानस्य पलाशि-पलाशाम-विलुल्लुत्तुपार-कणिकापहरण

रिवधूः । स्वभावोक्तिः, अनुप्रासः । अलोकस्य=प्रकाशस्य, आलो-
केन=विलोकेनेन, कृतः=उत्पन्नः, कस्यचित् शोकस्य मोक्षो यस्य सः ।
कोकः=चक्रवाकः, वराकोम्=दुःखिनाम् । 'बेचारी' इति हिन्दी ।

अथ समारस्य स्वयंमुखमनुभवन्ती पर्यटन्ती मुहूर्तमप्यपवातेः
सम्बन्धः । समीरं विशिनष्टि-कम्पितः=दोलितः, कुन्दकलापः=माप
समूहो येन तस्य । उन्मीलन्तीनाम्=विकाशमभ्यागच्छन्तीनाम्, मालती-
नाम्=बातीनाम्, मुकुलानाम्=कलिकानाम्, मकरन्दस्य=पुष्परसस्य
चारस्य=अपहृतः । पाटलिः="गुलाब" इति ख्यातः, तत्पटलस्य=
तत्समूहस्य, परागपुञ्जेन=धूलित्रयेन, पिञ्जरितस्य=पौतवर्णस्य
फरफरायमाणानाम्=पधास्रोतर्न कुर्वताम्, शुक्लपिक्वादीनां पतत्रैः=
पत्रैः उन्मथ्यमानस्य=विलोड्यमानस्य । वृद्धिं गमितस्येति यावत्
पलाशिपलाशामेषु=वृक्षप्रभेदेषु, विलुल्लुत्ताम्=विलुल्लुताम्, तुपारा

प्रकट कर रहे हैं, तबज वित्तिरी उत्तरोत्तर उच्च और अधिक उच्च स्तर
से शोक कर अपनी काम-पाटा का प्रकाशन तो कर रही है, पर अभी पेड़
से नहीं उतर रही है, और चक्रवा पक्षी ने प्रकाश देखकर कुछ शोक से
कम कर दिया है, फिर भी अभी बेचारी चक्रवा के पास नहीं आ रहा है

तत्पदचान्, इसी प्रकार की मनोहर शोभा देखते हुए, कुन्द
को कैसा देने वाले, खिल रही मालती की कलियों के मकरन्द के
सुगंधे वाले, गुलाबों के पराग से पीछे हो गए, धीरे-धीरे पंख फड़फड़
रहे शुक्ल-पिक्वादि पक्षियों से उन्मथित किये गये, और वृक्षों के पत्तों के

निद्राणां कारणद्वयानाञ्च तास्ताः शोभाः पश्यन्तौ, नडागतवट एव
 पम्फुल्यमानानां मकरन्दतुन्दिलानामिन्दोवर्गणां समीपत एव ममृश
 पाषाण-पट्टिकासु कुशामनानि मृगचर्मोसनानि ऊणोमनानि च
 विलीयोपविष्टानाम्, गायत्री-जप-पराधीन-दशनवसनानाम्, कलित-
 ललित-तिलकालकानाम्, दर्माहुलीयकालङ्कृताहुलीनां मूर्तिमत्ता-
 मिव ब्रह्मतेजसाम्, साकाराणामिव तपसाम्, २॥ ३॥ ॥ ॥
 ब्रह्मचर्याणां मुनीनां दर्शनं कुर्वन्तौ, कृतनित्यक्रियं परिपुष्ट-सुलसी-
 भालिकाङ्गि-कण्ठं ॥ सिन्दूरोद्ध्वपुण्ड्रमण्डित-ललाटं रामचरण-

भारेण = समविकसद्भारश्चेदेन, विद्राघिता = उत्सारिता, निद्रा येषां
 तेषाम् । पम्फुल्यमानानाम् = विद्यारूपांम् । विद्यारण्येणाद् वि-
 घातोर्दण्डात् धानच् । तुन्दमस्त्येषामिति तुन्दिलाः, 'तुन्दादिभ्य इत्यच्' ।
 मकरन्देन = पुष्परसेन, तुन्दिलानाम् = पिचण्डिलानाम्, भरितानामिति
 यावत् । ममृशपाषाणपट्टिकासु = चिकणमस्तरेपट्टिकासु । गायत्रीजप-
 पराधीने दशनवसने = ओष्ठौ येषां तेषाम् । कलिता = धारिता, ललिता
 = शोमनाः, तिलकालकाः = तिलकाः, यस्तेषाम् । "तिवक्कित्तिलकालङ्क-
 रत्यमरः । दर्माहुलीयकैः = कुशनिर्मितांगुलिधारणीभैः, पविषेति यावत्,
 अलङ्कृताः = भूषिताः, अगुह्यो येषां तेषाम् । मन्दिरपुष्पं तिग्गिरि-

वाले कारणद्वयों की उन-उन शोभाओं को देखते हुए, तालाब के
 किनारे ही, मकरन्द से भरे मिले कमलों के पास ही चिकनी प्रसन्न-
 शिखाओं पर कुशासन, मृगचर्मोसन और ऊणोसन बिछा कर बैठे हुए,
 गायत्री-जप में रूने होठों वाले, सुन्दर तिलक लगाये हुए, कुश की परिनी-
 से मुष्टोन्नत उँगलियों वाले, मूर्तिमत् ब्रह्मतेज, साधार तपस्वा और
 अव्यक्त धारण करके आये ब्रह्मचर्य के समान मुनियों के दर्शन करने
 हुए हम दोनों ने, नित्यक्रिया से निरुत्त हो गये, गले में बड़े दागों की
 हल्सी माछा पारण धिये, छाट पर सिन्दूर का ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये तथा

भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती रेचर-चक्रस्य, कुण्डल-
मायण्डलदिशः, दीपको मङ्गाण्डभाण्डस्य, प्रेयान पुण्डरीक-
पटलस्य, शोक-विमोहः कोक-लोकस्य, अवलम्बो रोलम्बसम्बन्धस्य,
दिन्दुकन्या येनचन दुष्टेन हता रक्षिता च सा साधुना, दुष्टनाशश्च
स्वनाशेनैव संवृत् इति कथाभागश्च । किन्तुनामपद्येन मङ्गलमपि शिष्टा-
चारानुमितभुतिकोषितेति कसेम्भताकं सूचितम् ।

कथाभागं पारममाणो भगवदादिपद्मकाश्यात्मकमुनिदेशरूपमपि मङ्गलं
समाचरति-अरुण एव इति । पूर्वस्यामिति-“दिशि” इति विशेषणम् ।
मरीच्यो नो मायाऽस्वास्त्योति मरीचिमाली = दीपवितरितः । बहुवीहृतरसमा-
सौपत्यशककर्मधारयपदपठितमपि “न कर्मधारयान्मत्वयोपो बहुव्रीहिभेत्तद-
भ्यपतिरतिकर” इति वचनं न सार्वभिकम्, ‘अमुकम्’ इति भाष्यप्रयोगा-
दिति ज्ञेयम् । अरुणः = ईषत्तोदितः । “ज्योतिषां खिरशुमान्” इति
भगवद्विभूतिमदूहातित्वेन भगवत् सर्वथा स्फुटम् । अथाऽऽदित्वं विशिनष्टि-
एव भगवानिति । “दिनस्य” इत्यन्त मालारूपकात्कारो यैरभौ रीतिः
प्रसादाख्यश्च गुणः । मणिः = रत्नम् । यथा हीरादिरन्यकारं धारयति
प्रकाशयति च पद्मार्थसार्थं तथाऽयमपि वाक्याभ्यन्तरतमोऽन्यार्थं प्रकाशयति
सकलानर्थानिति मणित्वेन रूपणम् । सौ नभसि घरन्ति गच्छन्तस्ति
रेचराः = भगवाः, तेषां चक्रस्य = समूहस्य, चक्रवर्ती = सम्राट् । सैन्यं
प्रवर्तयति सम्राट्, दिनाभियोगेन सर्वं महाममिति रूपणम् । आसण्डल-
दिशः = इन्द्रसम्बन्धिन्याः प्राच्या नादिकामानायाः । कुण्डलम् = कर्णा-
भरणविशेषः । वस्तुन्यमागोपकम् । मङ्गाण्डमेव भाण्डम् = सदनम्,
सत्य दापकः । प्रकाशकत्वमथाऽऽघोरहेतुः । पुण्डरीकाशाम् = वसनानाम्,
“पुण्डरीकं शिताम्भोजम्” इति विशेषमरणन्तु नात्र, रेवतस्यविशदित-
त्वात्, पटलस्य = समूहस्य । प्रेयान् = अनिशदेन शिवः । कोकानाम् =
सूर्यदेव आकाशमण्डल के रत्न, मधुसमूह के सम्राट्, इन्द्र की दिशा
(पूर्व) कर्षी नादिका के कुण्डल, मङ्गाण्डकृती एव के दीपक, कमलकुल

चिदमुद्रा-मुद्रित-व्यादुदण्ड-वक्षस्थलं हनुमन्मन्दिराध्यक्षं प्रणतवन्ती ।
 तेन चाऽऽस्तम्—“यद्यायुष्मन्ती सपदि महाराष्ट्रदेशं जिगीवि-
 पदवेदाचरेण्य मन्त्रके सम्मृद्य एतद् राम-रज तद्वागे निमज्जनम्”
 इत्यथार्य आयां तथैव व्यधिष्वहि ।

तदाहया यस्माणि परिधाय च, तत्समीपे समुपविश्य, तेन च
 समन्त्र-जपं बुध-जलेनाभ्युक्षितौ हनुमदङ्ग-विक्षित-सिन्दूरेण चिह्नित-
 विद्यौ स्वकीयौ सैन्धवौ समारुह्य । ततः पश्चात्तान् व्यूढ-वय-
 स्मान् त्रिदिशान् सुपरिणाहान् बाह्यान्तःकान् आवाभ्यां सह गन्तु-
 माज्ञाय मन्दिराध्यक्षोऽमापिष्ट—

“कुमारी ! इनः पुण्यनगर-पर्यन्तं प्रतिगम्यत्यन्तरालं महात्रय-

कृतिन्यक्रियमित्वादि । रामचरणचिह्नमेव मुद्रा = मुद्रणसाधनम्, एषा
 मुद्रितम् = अङ्कितम्, बाहुदण्डवधः = धतं वयं तम् ।
 समारुह्य = आरुढी । व्यूढम् = पृथक्, वयो देवो तान्
 पुरश्चनित्यर्थः । तद् परिणाह = विद्यालता देवो तान्, बाह्यान् =
 भीष्मचन्द्र के चरणों के चिह्नों से अङ्कित बाहुदण्ड और पश्चात्तान् वाले

हनुमान मन्दिर के अध्यक्ष को प्रणाम किया ।
 उन्होंने आज्ञा दी कि, ‘यदि तुम दोनों अभी महापण्ड देव को जाना
 चाहते हो, तो यहाँ ही इस रामरज को मस्तक में लगा कर, तालाब के
 किनारे प्रवेष्ट करो ।’ यह सुनकर हम दोनों ने देखा ही किया ।

उनकी आज्ञा से बंध पड़िन कर हम उनके पास बैठ गये । उन्होंने
 मन्त्र पढ़ कर, कुछ ही हमारे ऊपर एक विष्णु और महादेव की मूर्तियों
 के अंग में लगे सिन्दूर का तिलक लगाकर हम दोनों अपने-अपने पर
 छतार हो गए । फिर, बायाँपट्टी और विद्यालता छतार वाले पाँच-छतार, वनक
 पुरश्चर्या को हम दोनों के साथ जाने का आज्ञा देकर मन्दिराध्यक्ष ने
 कहा—

‘कुमारी ! यहाँ से हनु नगर तक, प्रत्येक दो कोस के अन्तः

णाद्यपि दृष्टौ, इति सर्वं शुभमेव परस्तात् सम्भाव्यते—इत्ये-
आचयोर्वृत्तान्तः ।”

ततो मुष्टुर्ते सर्वेऽप्येतद्वृत्तान्तस्यैव पौर्वापर्य-स्मरण-पराधीन
इवाऽऽसिपत । परिशेषे च पुटपाकयदन्तरेव दन्दद्व्यमानेन बाष्प
घ्रातेन आचिलस्यापि अप्रकटित-बहिःक्षेपस्य ब्रह्मचारिगुरोः प्रार्थ-
नया देवशर्मणा तोरण-दुर्ग-समीपे हनूमन्मन्दिरे एव निवास-
स्वीकृतः । तदेव च प्रबन्धुं सर्वेऽपि कुटीरादुत्थिताः ।

इति तृतीयो निश्वासः ।



आसिपत = स्थिताः, परिशेषे = पर्यन्ते । पुटपाकवत् = उभयतः
पाकवत् । आचिलस्य = कटुपस्य, धुमितस्येत्यर्थः । शोकः किमूल इत्यमं
रुद्रीभविष्यति ।

इति आशिपराजविजयवैजयन्त्यां तृतीयनिश्वासनिबन्धम् ।



दूर हो गया, पुरोहितजी के दर्शन भी हो गए और भविष्य में भी मंगल
का ही समावना है । यही हम दोनों का वृत्तान्त है ।

तदनन्तर छग भर सभी लोग इसी वृत्तान्त के पर्यापर्य का स्मरण
करते हुए से बैठे रहे । उसके बाद पुटपाक के समान अन्दर ही अन्दर
बन रहे तथा अधुओं से धुमित होते हुए भी बाहर से शान्त ब्रह्मचारि-
गुरु की प्रार्थना से, देवशर्मा ने तोरणदुर्ग के पास हनुमान् के मन्दिर में
ही निवास करना स्वीकार कर लिया और उसी का प्रबन्ध करने के लिये
सब लोग कुटी से उठ पड़े ।

शिवराजविजय के तृतीय निश्वास का हिन्दी-अनवाद समाप्त ॥

“कार्य वा साधयेयम्, देहं वा पातयेयम्”

—रुद्रकम्

मासोऽयमापादः, अस्ति च सायं समयः, अस्तं जगमिषु-
नगवान् भारकुरः सिन्दूरद्रव-स्नातानामिव वरुण-दिग्बलम्बिना-
नरुण-वारिषाढानामभ्यन्तरं प्रविष्टः । कलविद्धाश्चाटकैरुतैः परि-
प्लुप्तौ नोडेपु प्रतिनिवर्तन्ते । वनानि प्रतिक्षणमधिकाधिकां दयामनां
कलयन्ति । अधाकस्मान् परितो मेघ-माला पर्वतश्रेणीषु प्रादुरभूत् ।

परपुत्रार्थिद आष्वयकं वाचिकं पप्रच्छादाय मदता क्लेशेन तोरणदुर्गं
विषय प्रतिगच्छानपदिष्टे तुरीयनिश्चातयकथामाया भक्तिरसज्वरीरद-
नचे स आपादः = युधिः । सिन्दूरद्रवेण = नागोद्वरसेन, स्नाता-
नामिव = कृतस्नानानामिवेऽनुत्पन्ना । वरुणदिक् = अभिमा, तद्वलम्बि-
नाम् = तदाभितानाम् । कलविद्धाः = वरुणाः “गोरेया” इति हिन्दी ।
वरुणया अपत्यानि चाटकैराः, “बटकाया एगि” त्वरत्ये प्ररवयः, तेन कृतैः =
कृतैः । नोडेपु = कुलायेतु । प्रतिनिवर्तन्ते = नववर्तन्ते । पक्षिणः समग्र-
दिनमुद्भूय सायं स्वावासतये समिलिता भूरी वायितं पुर्व-स्तीर्तीय पक्षि-
वातिः । कलयन्ति = पारयन्ति । मेघमाला = वारिदधनि । पर्वतश्रेणीषु =

• श्रीः •

चतुर्थ निधाम

“या तो कार्य सिद्ध कर दूँगा, या छोर को नष्ट कर दूँगा ।”
आपाद वा महीना है और सन्ध्या का समय । अन्धधल पट्टने के
रङ्गुक भागवान् पूर्ण, पक्षिम दिशा में स्थित सिन्दूर से नरावे हुए से लक्ष
रंग के बादलों में प्रविष्ट हो गये है । गोरेया पक्षी अपने पक्षों के बलव
से पूर्ण शीतलों में स्नान कर रहे है । वन एवं प्रविषण अधिकाधिक अन्ध-
कारपूर्ण (रात) होत आ रहे है । अकस्मात् आगे स्नान से परंत्त

कनो ह्योऽपन्नी, भवभोषकान् इत्यापन्नी, कन्यास्थानपन्नी, कर्कपन्नी, मेवान् मो कने-कनेन त्रयी, अन्यकारमात्रिनं च इत्येवमाद्यमहोति; वाचस्पत्यव्यासार्थं भगवन्नामोक्त्या येन वद कानादुपनीति, गुरुगोपनं गुरुगुरु गजेनोपनं गजगर्भनिर्गमं तदन्तः शालीयवाक्य-कवेनेन कर्तारि-कन्दर प्रतिकर्तारिनिभ्रमुपनिर्गमनं नदं शब्देन पर्यपूर्णं सादृश्यमानो । परमात्मार्थ-देहं वा दत्तं, कार्यं वा साधयेयम्” इति कृतार्थनिर्गोपनी शिवगीता-चरमे । निजकार्याप्रिवर्तने ।

यस्याभ्यधुः स्वयं परिभ्रमी; कथं स न भवान् स्वयं परिभ्रमी । यस्य प्रभुः स्वयं साहसी; कथं स न भवान् स्वयं साहसी ? यत् असी” त्वनरः । अनुशासो धर्मशान्सात् । अवलोककान् = दृष्टकान् । कर्तारपन्नी = विदारपन्नी । अविशेषोक्तिरुक्तवन्तं सम्भवानिबन्धत् । सौवर्णकंपणेय = हेतुवशनेनेकेकुपेधा । “यान्ति निदधः ४५” इत्यनरः । यत्साहकान् = मेवान् । पर्यपूर्णं = वरितः पूर्णोत्कृष्ट ।

कानों को छोड़ती हुई, दर्शकों को बँगाती हुई, वन में रहने वालों को डपटाती हुई, आकाश को काटती हुई, बादलों को सोने के कीड़े से नाखों-सी हुई, अन्यकार को अग्नि से बल्लावते-सी हुई शिविनी दमकती है, ठर तक दूसरी ओर भी विद्युत् मानो ज्वालासमूही से बादलों को टक छेती है । चमकने के बाद चमकना, गर्बन के बाद गर्बन, इस दृश्य सैकड़ों तोपों के लूटने से उत्सन्न स्वर के समान पर्वत कन्दराओं की प्रतिध्वनि से चौगुने हुए महाशब्द से वह बंगल गूँज उठा । लेकिन अब भी “या तो देह का नाश कर दूँगा या कार्य को सिद्ध कर दूँगा” यह प्रतिज्ञा किये शिवाजी का दूत अपने कार्य से विरत नहीं हो रहा है ।

त्रिषका अप्यध स्वयं परिभ्रमी है, वह परिभ्रमी कैसे न हो ? त्रिषक स्वामी स्वयं साहसी है, वह साहसी कैसे न हो ? त्रिषक स्वामी त्व

सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य । अयमेव अहोरात्रं जनयति
अयमेव वत्सरं द्वादशमु भागेषु विभजति, अयमेव कारणं पण-
मृतूनाम्, पण एवाहो करोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एनेनैव सम्-
दिता युगभेदाः, एनेनैव कृताः कल्पभेदाः, एतमेवाऽऽश्रित्य भवति

चक्रवाकानाम्, लोकस्य = समुदायस्य । शोकस्य विमोक्तः = मोक्ष-
रूपकम् । कोकमिश्रुनाना रात्रिविरहः कविममयख्यातः । अथ बहुव्रीहिरप्रदर्श-
टीकाकृतामनवेक्षितमसाम्प्रदायिकञ्च, बहुव्रीहिसंग्राह्याभिधेयस्य समारोपण-
देवोपपत्तेः । रोलम्बानाम् = भ्रमराणाम्, कदम्बस्य = समूहस्य । अव-
लम्बः = आश्रयः । सर्वश्चासौ व्यवहारः = ऐदिकामुष्मिकलक्षणो व्यापार-
तस्य, सूत्रधारः = प्रवर्तयिता । दिनस्य, इनः = स्वामी । “इनः सूर्ये प्रभो”
इति कोशः । इनपदस्य स्वामिसूत्रांभयवाचित्वेऽप्यत्राद्यपर्यायत्वमेवेति ध्येयम् ।
अथ स्वभावोक्त्याऽलङ्करोति तमेव भगवन्तम्-अयमेवेति । अश्च
रात्रिश्चाहोरात्रस्तम् । शशधरेऽपि किरणातुप्रवेशद्वारा विकाराकत्वमेतदीयमेवेति
भवति द्वितयजनकत्वमेवकारसार्थकवज्जनि विवेचनापटवः । जनयति = प्रादु-
र्भाषयति । वत्सरम् = हायनम् । द्वादशमु भागेषु = मेपादिमासरूपेषु ।
विभजति = विभजते । “भञ्जो आमर्दने” इत्यस्य रूपम् । भवति चात्र
मानस शासनम् ‘अहोरात्रे विभजते स्या मानुषदैविके’ इति । पण्णामृतूनाम् =
वसन्तशीर्षवर्षांशरश्मेन्तश्चिचिपणाम् । कारणम् = हेतुः । अयनम् =
सूर्यमार्गः । युगानाम् = कृतपेताद्वापरकलीनाम् । भेदाः = विभागाः । एनेनैव
सूर्यणेव, अन्वादेष्टत्वादेनादेशः । कल्पभेदाः, पट्टीतत्पुरुषः । कल्पद्वयेक-

के प्रमाण, चक्रवाकी का शोक दूर करने वाले, भ्रमरसमूह के आश्रय,
सम्पन्न व्यवहार के प्रवर्तक और दिन के स्वामी है । ये ही दिन और रात
के जनक हैं, ये ही वर्ष को बारह भागों में विभाजित करते हैं, ये ही छः
कटुओं के कारण हैं और ये ही उत्तरायण तथा दक्षिणायन (उत्तर और
दक्षिण मार्ग) का अवलम्बन करते हैं । इन्होंने ही सत्य, धेता, दापर
और वज्रियुग का भेद किया है, इन्होंने ही कल्पों का विभाग किया है,

दुर्गाध्यक्ष—(तं शिरो नमस्कृत्य जीवेत्सुक्ता) उपविश, उपविश ।
 तौ दुर्गाध्यक्षान् पुष्पित-पीषणामप्यन्यत्-बालभाषां तव
 तौ विष्णुमिवमादेभे, यन्—“कथं

ततो दुर्गाध्यक्षान् पुनश्चित्त-यौवनामप्यन्यत्-शालमात्र-
 नानाहृति पश्यन्, सपत्नितं विषारयितुमारेभे, यन्-“कथं
 त्वत्प्रेषितः श्रीमता महाराष्ट्र-राजेन गुप्त-विषय-सन्धानेषु”-
 ज्ञप्तवशात् यच्च “द्रष्टव्यामि प्रथमं विभेतेनाऽऽनोतं पत्रादिकम्”-
 नि निश्चय, “भगवन् ! प्रभुजेशान्ते मामाहूय प्रदत्तमिदं पत्र-
 मने, हन् म्यौघियनाम्” इति कटिघन्धनाग्निःसार्यं ददतो हस्ता-
 न्नाय, दद्याय च मन्मथायलम्बित-दीर्घ-प्रकारेण नृजी मनस्येव
 पेटया, आकुञ्चय, पूर्वोपादिष्ट-मग्नौ लपविश्य, पुनः पैनःपुन्येना-

पुनर्विषयं यं वनं यथा सामयि, न त्यक्तः = न दूरीकृतः, बालभाषः =
मनोरमं, यथा साम् । आकृतिम् = आकाशम् । गुणविषयाणाम् = रसो-
विषयाणाम् । सन्धानेषु = अनुसन्धानेषु कानेषु । अयत्थाय, तूर्णमिति
तेषु । द्रष्टव्यम्, सामान्यमविष्यति । मन्त्रे = पत्रे । "अथनं मन्त्रपत्रे-

दुर्गाप्यधु—(नरमस्तक हुए सवार को 'बियो' ऐसा कहकर) बैठो,
बैठो !

तब दुर्गापूज्य सरणाई को एही हुई भी बालभाव का त्याग न करने वाली उसकी मधुर आकृति को देखते हुए विचारते लगे कि "भीमान महापुरुष ने ऐसे गुप्त विषयों के ज्ञान के लिए इस बालक को कैसे भेंट दिया"। क्षणभर रुककर "पहले देनू क्या घर कोई पत्र आदि लाया है"—यह निश्चय करके, "भीमानजी, स्वामी ने पत्रान्त में मुझे बुला कर यह पत्र दिया है, इसे स्वीकार कीजिये", यह बरकर कमरबन्द से पत्र निकालकर देने वाले उस अध्यारोही के हाथ से पत्र लेकर, लटकर, लम्बे पर अवस्थित दीपक के प्रकाश में घुमघाम मन में ही पढ़कर तथा मोड़कर, पहले जिस कुर्सी पर बैठे थे जहाँ पर

दुर्गाधीश—मन्त्रे हरियोऽमि ।

मादी—भाम् भीमम् ?

दुर्गा—[विमला] नान्येषामपत्याभ्येवं तेजस्वीनि हठ-हृदयानि
स्वभक्तानि च भवन्ति । [पुनः सम्मुखमवोकथ] किं ते नाम ?

मादी—[अञ्जलि पद्या] आर्य ! मा चतुर्थीरसिद्ध इति वदन्ति
जनाः ।

दुर्गा—चिरञ्जीव [क्षण विम्व] अमु, सम्प्रति दुर्गान् वहिरेष
सम्मुखीने हनूमन्मन्दिरं गतिमतिवाहय, इयम् किञ्चिदुदञ्चति
मरोचिमालिनि अत्राऽऽगत्य पञ्चादिकं गृहीत्वा महाराज-निकटे
पातसि । चतुर्वीर—‘षाढम्’ !

इति निरो नमस्विद्या, प्रवित्तितृप्त्य, पनस शारदातोऽदधमुन्मुख्य,

दुर्गेन गम्यत इति दुर्गलक्षणं तस्मैरादिकम् पुराणेषु द्रश्यम् ।
सम्मुखीने = सम्मुख्ये । अविवाह्य = शपथ, उदञ्चति = उदयं प्राप्नु-
यति । मरोचिमालिनि = त्वरे, पातसि = गन्ताति । प्राप्नोत्यर्थे पाते-

दुर्गार्थं च—लगत्य दे, शत्रिय हो ।

सुदसवार—हाँ ! भीमम् ।

दुर्गाधीश—(मुसकर कर) अन्य की सन्तानें ऐसी तेजस्विनी,
हठहृदय और प्रमुखक नहीं होतीं । (पुनः सामने देखकर) तुम्हारा नाम
क्या है ?

सवार—(अञ्जलि करि कर) आर्य ! लोग मुझे चतुर्वीर सिद्ध
करते हैं ।

दुर्गार्यस्य—चिरञ्जीव ! (क्षण भर रुक कर) लौट, इस समय दुर्ग से
बाहर हो सामने वाले हनुमानजी के मन्दिर में ही एक शिठामो, सबेरे शुरू के
कुछ निकलते ही यहाँ आकर पञ्चादि लेकर महाराज के पास चले जाना ।
चतुर्वीर सिद्ध ने “बहुत अच्छा !” यह कह कर, प्रणाम कर,

ततः परं च—“अग्रे गुप्तसन्देशः कथनीया न वा ? ए स्वस्मादप्याच्छाद्य ममुक्तं प्रभुकर्णानिधीकरिष्यति न वा ? यत् लिपिः कस्यापि कर्णेन पश्य हस्तेऽपि पतेद्, इति वाग्मिरेवोदीर णो यो मम सन्देशः, इति परीक्षेयै न वाग्जालैः—” इति विविच्य दुर्गाधीशस्तेन बहुशः समालपत् । अन्ततश्च तं सर्वथा गुप्त-सन्देश-योग्यमाकलय्य, मनस्येव हर्षमनुभवञ्चिरं प्रशंसं शिवराजं यत्— “नेतेषु विषयेषु कदाऽपि सतन्द्रोऽवतिष्ठते महाराजः, स सदा योग्यमेव जनं पदेषु नियुनक्ति, नूनं बालोऽप्येषोऽबालहृदयोऽस्ति तदस्मै कथाधिध्याम्याखिलं वृत्तान्तम्, पत्रं च केषुचिद् विषयेषु सम-र्पयिष्यामि ।” एवमालपच्च—

स्वस्मादपि, यदा स्वत एवाऽऽच्छादयति तदा किमु वक्तव्यं परस्मादिति ध्वनिः । एवञ्चाऽऽत्मवार्त्ता स्वशब्द इति तत्त्वम् । कर्णेन पश्य = एवमस्मै । “तत्पुरुषे कृति बहुलमिति विमर्करुक् । परीक्षेय = परीक्षां कुर्याम् । तेन, “वृद्धो यूने”ति दर्शनेन सहायकशब्दाभावेऽपि तृतीया । तन्द्रया = आलस्येन, सहितः, सतन्द्रः ।

उससे आगे भी—“इससे गुप्त संदेश कहने चाहिए या नहीं; यह मेरी कही हुई बातों को अपने से भी छिपाकर प्रभु के कानों तक पहुँचा-येगा या नहीं ? लिखा हुआ पत्रादि किसी भी चुगलखोर के हाथ में भी पड़ सकता है । अतः अपना संदेश मौखिक ही कहना चाहिए । इसलिए वाग्जाल से इसकी परीक्षा कर लें”—यह विचार कर दुर्गाधीश ने उसके साथ बहुत कुछ बातचीत की । और अन्त में उसे सर्वथा गुप्त संदेश के योग्य समझ कर, मन ही मन हर्ष का अनुभव करते हुए, महाराज शिवराज की बड़ी देर तक प्रशंसा की कि महाराज ऐसे विषयों में कभी भी असावधान नहीं रहते, वह सदा योग्य व्यक्ति को ही पदों पर नियुक्त करते हैं । अवश्य ही यह बालक होने पर भी अबाल हृदय वाला है, अतः इससे सारा वृत्तान्त कह दूँ और कुछ विषयों से सम्बद्ध पत्र भी दे दूँ । फिर ऐसी बातचीत की ।

[किन्ने]

चतुर्थो निधासः

दुर्गाधोशः—मन्ये क्षत्रियोऽसि ।

सादी—भाम् भीमन् !

दुर्गाः—[स्मित्वा] नान्येषामपत्यान्येवं तेजस्यीनि दृढ-दृढ्यानि प्रमुखास्तानि च भवन्ति । [पुनः सम्मुखमवलोक्य] किं ते नाम ?

सादी—[अञ्जलिं वदन्] आर्य ! मां रघुवीरसिद् इति पदन्ति जनाः ।

दुर्गाः—चिरस्थीय [क्षणं विराम्य] अस्तु, सम्प्रति दुर्गान् सहिरेष तन्मुखीने हनूमन्मन्दिरं रात्रिमातिषादय, इयानु किञ्चिदुदघानि मरीचिमालानि अत्राऽऽगत्य पत्रादिकं गृहीत्वा मदागज-निषटे यातासि । रघुवीरः—'बादम्' !

इति शिरो नमस्कृत्या, प्रतिनिष्टुय, पनस-सागरातोऽवमुत्सृज्य,

दुःखेन गम्यत इति दुर्गलक्षणं तद्वत्सदिवश्च पुण्येन द्रव्यम् । तन्मुखीने = सम्मुखीने । अतिषादय = पापय, वदघानि = उदयं मानु-
यति । मरीचिमालानि = मूर्ते, यातासि = गन्तासि । मापण्यार्थवाद याते

दुर्गाधोशः—समता है, धरिप हो !

पुदसवार—हाँ ! भीमन् ।

दुर्गाधीशः—(दुर्गाधोश वर) भय की कन्ताने देगी तेजस्विनी,
दृढदृढ और प्रमुखा मरी होती । (पुनः सामने देखकर) दुर्गाधोश माय
वश है !मवार—(अञ्जलि दाय वर) आर्य ! छोटा मुझे रघुवीर निर
करते हैं ।दुर्गाधोश—मिस्त्रीव ! (लण पर एक वर) और, इस समय दुर्गा
बाद ही लण्डने जाने दूँ, मानक के मन्दिर से ही रात बिताओ, रात के दुर्ग के
पुनः निरुद्ध होने ही वहाँ आकर वहाँ से निकलकर मदागज के पास चले जा
रघुवीर निर ने "बादम्" कहा " वर वर वर, समान वर,

मत्तवदि-श्रीमद्विष्णुवाक्यव्यास-प्रणीतः

शिवराज-विजयः

प्रथमो विरामः

(विष्णुवाक्यव्यास-प्रणीतः)

स्वावरण-वाहित्य-भीमांसायाचार्येण

पं० श्रीममर्जापाण्डेयशारिणा

विरचितया विजयन्या

८२० ८० इत्युक्तधितरि-

श्रीकेशनाथमिश्रविरचित-

भाषानुवादेन च

विभूषितः ।



प्रकाशकः—

मणेरु-प्रीतः स्वकाय श्रीगुणानुमार-व्यास-सनयः

श्रीकृष्णानुमारव्यासः

प्रथमो निष्ठातः

ज्ञः पराङ्मनसा, असावेव चर्चति चर्चति अर्हति च
वेदा एतस्यैव बन्दिनः, गायत्री अगुमेव गायति,
नष्टा प्राज्ञा अगुमेवाहरहरपतिष्ठन्ते । धन्य एव पुलमूलं
मचन्द्रस्य, प्रणम्य एव विश्वेयामिति उद्देयन्तं भात्यन्तं प्रणमन्

समसाधुगात्मकः स्वातः शालविदान् । परमेष्ठिनः = विधातुः । पराङ्-
मनसा = भन्तिमा पराङ्मान्ना स्वाता सत्त्वा । चर्चति = पुनः पुनः
चर्चति । पराङ्मनसा । पराङ्मनसा न वैराग्यसमाप्तायति न वा
रागविषयानुनोदितमिति भूयो भूयो प्रयोगान् प्रदर्शयति । पराङ्मनसा
देवोपातिरिति स्वयम्भूतं निवेदितम् । बन्दिनः = सुतिराट् । वेदाः
= ऋग्यजुःसामाथर्वविधाः । एतेन एवं ब्रह्मद्विगति युचितम् । "भन्त-
न्मादेयात्" इत्यधिकरणे हि निगूढनादित्योपायब्रह्मसूत्रमानत्वम् ।
त एव "गायन्मनुमेव गायत्री" त्येवकारमद्वितं वाक्य स्वरसतः सञ्चयते ।
"गायन्" इति तद्व्युत्पत्तिरप्यत एवोक्तवते । ब्रह्मणि निष्ठा येषां ते,
वेदपारगा इत्यर्थः । उपनिष्ठन्ते = उपासते । "उपादेवपूजा-सञ्चयिकरण-
मिवकरणार्थिधि" त्यात्मनेपदम् । भात्यन्मन् = धर्तुम् । "भात्यद्विबस्व-
त्सतादपरिदितोऽप्यारम्य" इत्यमरः । भात्यत्वं प्रणतिहेतुः । प्रणामो हि
स्वानुदयत्वबोधनम्, तत्र प्रणामे गुणे सुखमेवेति न विरोधितम् ।

इन्का आधार लेकर ही ब्रह्मा की पराई (सबसे बड़ा और भन्तिम)
सत्त्वा पूरी होती है और ये ही बार-बार अगन् की सुधि, पालन और
सहार करते हैं । वेद इन्ही का बन्दना करते हैं, गायत्री इन्ही का गान
करता है और ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण प्रतिदिन इन्ही का उपासना करते हैं ।
भगवान् रामचन्द्र के कुल के मूल ये सूर्यदेव धन्य हैं । ये भगवान् सूर्य
सभा के प्रणाम्य हैं, यह विचार कर, उदय होते हुए सूर्य को प्रणाम करता

निकटे समुपतस्थे अवालोकयन्-यन् पूर्वम्यामन्ति विशाला पुष्प-
घाटिका, यस्यागनिमुक्त-लताः सौरभेण विष्णुपद्मपि मदयन्ति,
युधिका सुगन्ध-नग्द्वर्हरितामपि हृदयं हरन्ति, पाटलि-पटलानि
अलि-पटल-रसनाश्चटुलयन्ति, मालतिकाश्च मरन्द-विन्दु-सन्दो-
हैवसुमती वासयन्ति । तस्यां मन्दिर-पूर्वद्वार-मम्मुखे एवास्त्येका
परम-रमणीया ज्योत्स्ना-स्पर्श-प्रगटित-द्विगुणतर-चाकचक्या

त्यमरः, अध = निम्नागे, स्तम्भारम्भस्य निकटे । अधस्तम्भेत्यत्र “सपरे
शरि वा विमर्गलोपः” । अतिमुक्तलता = माधवीलताः, “अतिमुक्तः
पुण्ड्रकः स्याद्दाम्न्ता माधवं लते” त्यमरः । सौरभेण = मोगन्धेन ।
विष्णुपद्म = नभः । “विष्विष्णुपद् वातु पुस्याकाशविहायसी” इत्यमरः ।
युधिका = मागध्वः । “अथ मागधी । गणिका युधिकाऽम्बुधे” त्यमरः ।
हरिताम् = दिशाम् । हृदयम् = मध्यम् । अन्तर्गलप्रान्तमिति वाचत् ।
हरन्ति = स्वाधत्ताकुर्वन्ति । पाटलिपटलानि = मोघासमूहाः । “पाटलिः
पाटला मोघा काचस्थानी पलेरुहा । कृण्वन्ता कुवेरधी” त्यमरः ।
अलिपटलरसना = द्विरेषशतत्रिंशः । चटुलयन्ति = चञ्चल्यन्ति ।
मालतिका = जातयः । “सुमना मालता जातिरि” त्यमरः । मरन्द-विन्दु-
सन्दोहै = मकरन्दवृषद्वगणैः । वसुमतीम् = वसुधाम् । वासयन्ति =
सुगन्धयन्ति । परमरमणीया = नितान्तहृद्या । वैदिकविशेषणमिदम् ।
ज्योत्स्ना = कीमुखाः, स्पर्श = संसर्गेण, प्रकटित द्विगुणतरं चाक-

चट्टे, सट्टे होकर देखा कि—पूर्व में एक विशाल घाटिका है,
माधवी लताये अपने सौरभ से आकाश को भी मदमस्त बना
है, जुही के पेड़ सुगन्धित तरङ्गों से दिशाओं के भी हृदय को हर
है, पादरि के समूह भ्रमर कुली की रसनाओं को चञ्चल बना रहे
और मालती लताये मकरन्द विन्दु के समूहों से पृथ्वी को सुगन्धित
कर रही है । उस घाटिका में मन्दिर के पूर्व द्वार के सामने ही,
एक परम सुन्दर, चाँदनी के स्पर्श से द्विगुणित चमकमाइट को प्रकट

सोपानप्रवालदृष्टम्-पुण्यरोदा हंसपक्ष-बलश-मृदुवि-विजित्वर-
पल्लभाष-वेदिषा । आत्माभाग्यनुमानामुपवेशाय रक्षिताः सापा-
दमदा एव वनिषन् मद्राः, तेषामन्यतमे उपदिष्टा पालिका ।
केचं दर्शेन सुवर्णम्, कलरदेन पुनरोदितान्, केसी रोहम्ब-वद-
भान्, सल्लादेन पल्लभर-कलान्, सोपनाभ्यां मरुजानान्, अधरेण
कन्धुजीवम्, हासेन स्योक्तां तिरस्चुर्यन्ती, वयसा एकादशमिव वर्ष

चतुर्थम् = चान्तिगिरौषो वया सा । सोपानप्रवेण = आरोहणप्रवेण,
"आरोहण रयन् । सोपानमि" इत्यमरः, अलङ्कृता = विभूषिता, अत एव
चतुर्थम् = वेदभोग्यरक्षणानेन, अयरोदः = रियतिस्थानं वयसाः सा । हंस-
पक्षपाणाम् = कादम्बरपाणान्, "गदम्बपक्षपाः, वर्षं पक्षं च तनूदरवि"
इत्यमरः, बलशपायाः = निगायाः, छत्रैः = घोभायाः, विजित्वरपाणाम् =
ज्वरनर्त्यनानाम्, धवलानाम् = म्बलानाम्, माळ्याम् = मलपाणाम्,
वेदिषा । मद्राः = उच्छिन्नान्मयः, उच्छिन्नार्थकान्मयैरेव, "दृष्टोऽन्धः
पतिरेव मयः कमाव" इत्यादी मसिद्धम् । पालिका, इयमेव कथानाविष्टा ।
"कर्मण सुवर्णं तिरस्चुर्यन्ती" म्येवरूपेण सर्वशान्त्यः । कर्मण सुवर्णतिरस्का-
पेक्या सुवर्णरोपमानानादप्यर्थात्वा मलीनालंकारः मृदुदयभनसंवेद्यः ।
रोहम्बदृष्टान् = भ्रमरसमूहान् । कन्धुजीवम् = रक्तकम्, "रक्तवस्तु
कन्धुजीवम् कन्धुर्जवक" इत्यमरः । "दुपहरिषा" इति हिन्दी । हासेन, हास्य

करनेवाली तीन संक्षिप्ती से चित्रित, चार अक्षरोदपाली, हंस के पंख की-
सी उल्लसक छवि की वर्तनेवाले दरेत पक्षों से निमित्त, वेदी (चतुर्थरा)
है । इस पर आगन्तुओं के बैठने के लिए पायर से ही बनी हुई कुछ
कुर्तियाँ हैं जिनमें से एक पर एक पालिका बैठी है । यह पा-
रनेगी नीर वर्ण से सुवर्ण का, मधुर शब्द से पुष्प कोमित का,
से भ्रमर-समूहों का, सल्ला से चन्द्रमा की कला का, नेत्रों से
मृदुपदरों पुष्प का, हास से चर्चिता का तिरस्कार

निकटे समुपनम्ये अवान्त्रोकयन्-यन् पूर्वम्यामन्नि विशाला पुष्प-
याटिका, यस्यागतिमुक्त-लता मीरभेण विष्णुपदमपि मदयन्ति,
युथिका मुगन्ध-तरङ्गैर्हरितामपि हृदयं हरन्ति, पाटलिपटलानि
अलिपटल-रमनाब्जदुलरन्ति, मालतिकाश्च मरन्द-विन्दु-सन्दो-
हैर्यमुमती वासयन्ति । तस्या मन्दिर-पूर्वद्वार-समुखे एवाम्येका
परम-रमणीया ज्योत्स्ना-स्पर्श-प्रगटित-द्विगुणतर-चाक-वस्या

त्यमरः, अध = निम्नाऽऽ, स्तम्भाग्भ्यम् निकटे । अपस्तम्भेत्यत्र “त्परी
शरि वा विमर्शोपः” । अतिमुक्तलताः = माधवीलताः, “अतिमुक्तः
पुण्ड्रकः स्याद्वास्यती माधवी लते” त्यमरः । मीरभेण = मीरान्वयेन ।
विष्णुपदम् = नभः । “विषद्विष्णुपदं वातु पुण्याकाशविहायसी” इत्यमरः ।
युथिका = मागधी । “अथ मागधी । गणिका युथिकाऽम्बुदे” त्यमरः ।
हरिताम् = दिशाम् । हृदयम् = मध्यम् । अन्तरालप्रान्तमिति यावन् ।
हरन्ति = स्वापस्त कुर्वन्ति । पाटलिपटलानि = मोघातमूलाः । “पाटलिः
पाटला मोघा वाचरपाथी फलेरुहा । कृष्णवृन्ता कुबेराधी” त्यमरः ।
अलिपटलगसना = द्विरेकत्रातजिह्वाः । चटुलरन्ति = चञ्चलरन्ति ।
मालतिका = ज्ञानयः । “मुमता मालती जातिरि” त्यमरः । मरन्द-विन्दु-
सन्दोहैः = मकरन्दपृषद्गणैः । वसुमतीम् = वसुधाम् । वासयन्ति =
मगन्धयन्ति । परमरमणीया = नितान्तद्वया । वेदिकाविरोधमिदम् ।
। तस्याया = वीमुयाः, स्पर्शेन = ससर्गेण, प्रकटित द्विगुणतर चाक-

निकट, खड़े होकर देखा कि—पूर्य में एक विशाल याटिका है,
जिसमें माधवी लताये अपने मीरभ से आकाश को भी मदमस्त बना
रही है, लुई के पेड़ मुगन्धित तरङ्गों से दिशाओं के भी हृदय को हर
लेते हैं, पादरि के समूह धमर कुलों की रसनाओं को चञ्चल बना रहे
हैं और मालती लताये मकरन्द विन्दु के समूहों से पृथ्वी को मुगन्धित
कर रही है । उस याटिका से मन्दिर के पूर्व द्वार के सामने ही,
एक परम सुन्दर, चाँदनी के स्पर्श से द्विगुणित चमकमाहट को प्रकट

निनदाद्वयं चतुर्थीति । अथ च-पाठ-कृति विज्ञाप-
 क-पाठ-वेदिका । अथानामानुमानात्पुनरेवमाय विधानः पाठा-
 न्ना एव कतिचन मन्त्राः, तेषामन्तरमेव वेदिका चालिका ।
 नैव कर्णेन सुवर्णम्, कलादेव पुनरोक्तिम्, वेदी रोम्भा-कद-
 म्ब, कलादेव कलाध-कला, लोचनान्तरां मन्त्रानाम्, अपरेण
 अनुजीयम्, दासेन पदोक्तं निरनुवर्ती, ययमा एकादशमिष पयं

पाठम् = चालिकातिथी ययमा सा । सोपानप्रयेण = आयेदणप्रयेण,
 "आयेदण रयन् । सोपानमि" इत्यम्, अलङ्कृता = विभूति, अथ एव
 चतुर्थी = वेदमन्त्राणां ययमेव, अथवेद = निरतिथान् ययमा सा । इति-
 पठानाम् = कदम्बपाठानाम्, "मन्त्राण्युक्ताः, पयं पयं च तन्वदमि"
 इत्यम्, पल्लवाः = विज्ञायाः, एते = रोम्भायाः, विज्ञित्यराणाम् =
 ययमन्त्राणाम्, पल्लवानाम् = मन्त्राणाम्, पाठानाम् = मन्त्राणाम्,
 वेदिका । मन्त्रा = उत्पन्नभूमयः, उत्पन्नार्थकान्मन्त्रेण, "रुदोऽम्भः
 पतिरेव मन्त्रमन्त्र" इत्यादी मन्त्रिणम् । चालिका, इयमेव कथानाविका ।
 "यनेन सुवर्णं त्रिरनुवर्ती" इतिरूपेण मन्त्रशान्दयः । यनेन सुवर्णं त्रिरनुव-
 र्तेत्या सुवर्णं त्रिरनुवर्तमानानादपर्यन्तं प्रत्यावर्तनात् । तद्वदप्यन्येऽप्येव ।
 रोम्भाकदम्बान् = अमरसन्तान् । अनुजीयम् = रचयम्, "रचयन्
 चतुर्थी चतुर्वेदक" इत्यम् । "दुपहरिया" इति हिन्ता । दासेन, दास्य

मन्त्रेवादी सोम मन्त्रियों से जोनित, चार अवरोहवाली, इस के पंग की-
 ती, उगमल उमि की चतुर्वेदाले वरत कथनों से निमित्त, वेदी (चतुर्वेद)
 है । इस पर आगन्तुओं के बैठने के लिए पत्थर से ही बनी हुई कुछ
 किंवदंती है दिनमें से एक पर एक चालिका बैठती है । यह चालिका
 यनेन गौर वर्ण से सुवर्ण का, मधुर शब्द से पुरय कोहित का, बाठी
 अमर-सन्तान का, सलाह से चन्द्रमा की कला का, नैयों से शत्रुओं का,
 अपर से दुपहरी पुण्य का दास से चाँदना का त्रिरकार करती हुई, यय से

स्पृशन्ती, श्याम-कौशेय-वस्त्र-परिधाना, श्वेत-विन्दु-सन्दोह-सङ्कुल-रक्ताम्बर-कञ्चुकिा, कण्ठे एकयष्टिकां नक्षत्रमालां धिभ्रनी, सिन्दूर-चर्चा-रहित-धम्मिल्लेन परिशिष्टं पाणिपीडनमिति प्रकटयन्ती, हस्ते पाटलि-कुमुद-स्तवकमेकमादाय शनैः शनैर्भ्रामयन्ती, तमेवा-वलोकयन्ती च, अविदित-बहुल-तान-तारतम्यं मन्द-मन्दं मुग्ध-मुग्धं मधुर-मधुरं किञ्चिद् गायतीति ।

वर्णः श्वैत्यमय इति कविसमयख्यातिः । श्यामं कौशेयवस्त्रम् = पट्टयसनम्, परिधानं यस्याः सा । श्वेतविन्दूनां सन्दोहैः = समूहैः, सङ्कुलस्य = व्यात-स्य, रक्ताम्बरस्य = रक्तवस्त्रस्य, कञ्चुकी = चोलिका यस्याः सा । बहु-मीहो “शेषादिभाषे” ति क्विप् “केऽण” इति ह्रस्वः । एकावलीम् = एक-यष्टिकाम् । नक्षत्रमालाम् = सप्तविंशतिमुक्तामयीम् । “एकावल्यैकयष्टिका । सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैरि” त्वमरः । सिन्दूरचर्चा-रहितेन = कुङ्कुमसम्पर्कशून्येन, अनूदाः सीमन्ते सिन्दूरं न धारयन्तीति प्रथा । धम्मिल्लेन = संयतवेशसमूहेन, “धम्मिल्लः संयताः कचा” इत्य-मरः । पाणिपीडनम् = विवाहः । परिशिष्टम् = अवशिष्टम् । स्तवकः = गुच्छः, तम् । अविदितं बहुलं तान्तारतम्यम् = तानोत्कर्षोपकर्षो, यस्मिंस्तत् । क्रियाविशेषणम्, अप्रेतनानि च ।

एकादश वर्ष का स्पर्श-सा करती हुई, श्याम वर्ण के रेशमी वस्त्रों को पहने, सफेद बुँदियों के समूह से व्यात रक्त वर्ण की कञ्चुकी धारण किये, गले में सत्ताईस मोतियों से बनी हुई एकलरी (आभूषण) पहने, सिन्दूर-सम्पर्क से शून्य सीमन्त (माँग) के द्वारा ‘अभी इसका विवाह अवशिष्ट है’ यह प्रकट करती हुई, हाथ में गुलाब के फूलों का एक गुच्छा लेकर उसे धीरे-धीरे घुमाती हुई और उसी को देपती हुई, तानों के क्रम-विचार से रहित कुछ मन्द-मन्द मनोहर-मनोहर और मधुर-मधुर गा रही है ।

यद्यपि नैतया सरस्वतो-सरूपया अज्ञान-सातोत्सङ्ग-शयनाति-
रिक्त-सांसारिक-सुखया कदाऽपि गानुं शिक्षितम्, न वा गायकानां
शस्त्राः कर्ण-रसायन-मूर्च्छनाः कर्णातिधीकृताः, तथाऽपि मन्त्र्यमान-
मपि, श्रुत्यमानमपि, आश्लेष्यमानमपि, अदर्शित-रागविशेषमपि,
आरोहोद्-ध्रुवाभोगालङ्कारादि-कथा-शून्यमपि, निज-कम्पना-
माश्रयम्, तद्देशीय-साम्य-स्त्री-मानानुकूलम्, सुदोष-म्वर-रणनं

अज्ञातं सातोत्सङ्गशयनादतिरिक्तं सांसारिकं सुखम् = विषयानन्दो
यथा तथा । कर्णयोः = भोजयोः, रसायनानि = आनन्ददायिन्, मूर्च्छनाः ।
कर्णातिधीकृताः = भोजगोचरीकृताः । मूर्च्छनानां भोजगोचरत्वे विदुते
कर्णतिथि-करणरूपे भक्त्या समारोप इति तत्प्रापिनाम गुणः ।

मानमिदं परमसरसादि-भासीदिति सम्बन्धः । मानं विशिनष्टि भाष्य-
मानम् = शब्दम् । श्रुत्यमानम् = विधिप्रमाणम्, पूर्वोपरसम्बन्ध-
मिति यावत् । आश्लेष्यमानम् -- पुनः पुनश्चाप्यमाणम् । यदपि गाने
गुणताऽऽश्लेष्यमानतायास्तथाप्यनवसरे विद्यन्ते दोष-वमेवेति चेदित्यम् । अ-
दर्शित = न प्रकटकृतः, रागविशेष = लज्जिताद्यनेकभेदः, दर्शितम् ।
आरोह = सार-ग-म-प-ध-नीनामुर्ध्वत्वम्, अश्रुता = तत्त्व-चेत्यम् ।
भयः = विषयदम्, आभोग = रागवितारः, अलङ्कार = रसादिः,
तत्कथाशून्यमपि । तद्देशीयानां मान्यमानाणाम् = शब्द-रस-रसम्,

यद्यपि सरस्वती के समान रूपवाली तथा गीता की गीत के संगे के
अतिरिक्त किसी भी सांसारिक गुण को न जानने वाला इस कालिदास
के न तो कभी गाना ही भोग्या था भोद न गायका का कान के
मधुर कर्ण करने वाली रसा-लङ्कारों की ही गुणा था, फिर भी
लज्जिताकार होने पर भी, पूर्वोपर सम्बन्ध एव होने पर भी, पुनः पुनः
उपस्थित होने पर भी, किन्तु निरन्तर एव से रहित होने पर भी, अज्ञान
अवरोध, भय (स्वर का विषयता), राग विषय एवं अलङ्कार अज्ञान के
तात्त्व से एव होने पर भी, वैयर्थ्य अवनत बहुरस-रस, इत एव
इदक इत्युक्तों के होने के कारण, कभी आवाज के रस या रस

गानमिदं परम-सरसं परममधुरं परमहारि चाऽऽमोत् ।

रघुवीरसिंहम् स्वरालाप-श्रवणेनैव पावशो विलोक्यैनां
कोऽहम् ? काहम् ? केयम् ? किमिदम् ? इत्यखिलं योगपद्येनैव
विसम्मार ।

अहो ! आश्चर्यम्, य एष फणि-फणा-फून्कारेष्वपि सक्रोध-
हर्ष्यक्ष-जुम्भारम्भेष्वपि भल्ल-तल्लजान्म-परिस्पर्धि-स्वर-नखर-भल्ल-

गानस्य = गानेः, अनुकल्पम् = तुल्यम् । मुष्ट दीर्घाणाम् = ताराणाम्,
स्वराणां रणनम् = धनिः, यस्मिन्नुत् । परमहारि = अत्यन्ताकर्षकम् ।

अखिलम् = समस्तम् । योगपद्येन = एककालम् ।

“विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।

तव स्वप्ने मम हि परिनुदेन्द्रियगणो

विकारः कोऽप्यन्तर्ब्रडयति च तापश्च तनुते ॥”

इति प्रार्चनपद्यं तद्दशावधारणायानुचिन्तनीयम् ।

अहो आश्चर्यम्, “ओदि”ति प्रशस्तत्वं प्रकृतिभावश्च । फणिकणा-
फून्कारेषु = सर्पस्फटय-“कूँ”रवेषु । सक्रोधस्य = कुपितस्य, हर्ष्यक्षस्य =
वेशरिणः, “हर्ष्यक्षः वेशरी हरिः” त्यमरः, जुम्भारम्भेषु = मुखव्यादा-
नोपक्रमणेषु । भल्लतल्लजानाम् = प्रशस्तभल्लानाम्, “मत्तल्लिका मच्चर्चिका
प्रकाण्डमुद्धतल्लबी । प्रशस्तवाचकान्यमूनी” त्यमरः । अपस्य परिस्प-
र्धिनः = प्रतिद्वन्द्विनः, स्वराः = कटोराः, नखराः = नखाः येषां ते च ते

परम सरस, परम मधुर और परम मनोहर था ।

रघुवीर सिंह उस स्वर लहरी के श्रवण मात्र से परवश होकर, उस
वालिका को देख कर, ‘मैं कौन हूँ ? कहाँ हूँ ? यह कौन है ? यह
क्या है ?’ इत्यादि सभी कुछ एक साथ ही भूल गया ।

अहो ! आश्चर्य है । जिसने सर्पों के फनी की फुफ्फुारों में भी,
क्रोधाग्नि सिंह की जमुहाई के समय भी, उच्चम भालों के प्रति-
स्पर्शों तेज नाखून वाले रीछों के (मारने के लिये) दौड़ने के समय

निजपणकुटीरात् निश्चक्राम कश्चित् गुरुसेवने-पटुर्विप्रबटुः ।
 (“अहो ! चिररात्राय सुमोऽहम्, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव मद्

दलमेकमाकुञ्च्य, तृणशकलैः सन्धाय, पुटकं विधाय, पुण्यावर
 कर्त्तुमारेभे ।)

इत्या कुटी कुटीरः । “कुटीशमीगुण्डाभ्यो रः” । गुरुसेवने पटुः = उद्यतः
 विप्रभासो विप्रस्य वा घटुर्विप्रबटुः = ब्राह्मणप्रज्ञाचारी ।

अहो = साध्यसेवे नैतिककर्मानुष्ठानकालोपोत्थे ।

‘नोपतिष्ठति यः पूर्वं नोपस्ते यथ पश्चिमाम् ।

स गृह्यदृष्टिभ्याः सर्वमाद् द्विकर्मणः ॥’

इत्यादिभिः सन्ध्यावन्दनादिनित्यकर्मानुष्ठाने प्रत्ययाय-स्मरणेन शान-
 दिना तत्कालाग्निराहने रताभाविको द्विधोमः सताम् । चिररात्राय = विप्रम्
 “चिराय चिररात्राय चिरव्याघ्राभिरार्थका” इत्यमरः । स्वप्नः = निद्रा, स ए
 जालम् = भ्रान्तायः, तत्परतन्त्रेण = तदायत्नेन । पुण्यमयः, “ब्राह्म मुटु
 बुधे । पमार्थो चानुचिन्तयेदिति” मनूक्त्या । सपदि = सत्परम् । अय
 चिनोर्मि = मल्लकादि । कुट्टी = रत्ना, तस्या दलम् = पत्रम् । आकु
 ञ्च्य = नृत्न विराय । तृणानां शकलैः = मण्डैः । सन्धाय = समेज्य ।
 पुटके पुटकम् = मनुर्गः । “दोना” इति हिन्दी । पुण्याणाम्, अयचयः
 = मण्डपः, लान वा, तान ।

दुभा, कोइ गुरुसेवने व कुचक ब्राह्मण ब्राह्मण भवना पणकुटीरा से बाहर
 निकल ।

‘कोइ, ये बटु। देवदत्त नोटा रता, निद्रा से जाग में होकर मैंने कहा
 पुण्यमय कर्मों में निद्रा, यह रत्नारे गुरुका वा, मल्लकागमना का नाम
 है । एक को पुण्य पुट नोटा लाई, यह लोपण दुभा वर, केने के एक
 ने के कोइ कर, निनमी के कोइ कर, दोना रता कर, पुट पुनने लया ।

गाननिर्दे परम-सरसं परमभुरं परमहारि वाऽऽसीत् ।

रघुवीरसिद्धम् । स्वगालाप-प्रयत्नेनैव परवशो विलोभ्येः
कोऽहम् ? कः ? केयम् ? किमिदम् ? इत्यविलं योगप्रयेने
विसम्भारः ।

अहो ! आश्चर्यम् , य एव फणि-कणा-कृतकारेण्यपि सकोप
रुद्रवृक्ष-वृक्षनाशकैरेवपि भल्ल-तल्लबाध-परित्यर्षि-गर-नगर-भञ्ज
गानस्य - गात्रं , अनुकल्पम् = दुरयम् । मुः इ दीर्घाणाम् = तावन्तम्
स्वराज्यं रणजम् - धनिः, धर्मिणश्च । परमहारि = भयान्तराक्षम्
अभिः ३म् - समसम् । योगप्रयेन - एककान् ।

“ तनिधनुं यस्मां न मुषमिति वा कुलमिति वा
ब्रह्मदी निद्रा वा किमु विप्रविरसं किनु मदाः ।

नरं स्वयां मनं हि वारुणं दिव्यगणैः

विद्यया कोऽप्यन्तर्द्वयात् न तावच्च तनुो ॥”

इति वाच नरस्य तद्वयात् स्वरणापानुचिन्तनं च ।

यष्टिः, विमनायते हृदयम्, अग्निरि रोमाणि, क्षुभ्यति च मनः ।
तन् कथमिदम् ? किमिदम् ? कुन इदम् ? अहह ! सत्यम् ! वीर-
बालोऽप्येष प्राप्यावसरम् आहतो मदन-मृगयुना ।

‘तावदकस्माद् “रघुवीर ! रघुवीर ! त्वं शिववीरस्य चरोऽसि,
गूढाभिसन्धिषु प्रेक्ष्यसे, अल्पं तव वेतनम्, साधारणी तवावस्था,
खड्ग-धाराबलेहनमिव कष्टतरं तव कार्यम्, कैशोरं वयः, अवदु-

स्वेदवन्ति भवन्ति । एजते=कम्पते । विमनायते = वैकुण्ठमधिगच्छति ।
अञ्चन्ति = उदगतानि भवन्ति । क्षुभ्यति = धोभमनुभवति । मदन एव
मृगयु=व्यापस्तेन । रूपकम् ।

वीररसप्रधानेऽस्मिन् काव्ये तदंगतया विप्रलम्भशृंगारवर्णनमिदम् ।
सौवर्णारघुवीरसंहाबालम्बनविभावां, रघुवीरधैर्यध्वंससमुद्रताः स्वेदगात्र-
कम्पनादयोऽनुभावाः, निर्वेदादयश्चाग्रवाच्या व्यभिचारिण इति विभावनांयम् ।

तावदकस्मादन्तःकरणेन स्वयमेव प्रबोधितः पुनस्तानि वैशिष्ट्येति सम्बन्धः ।
“शिववीरस्य चरोऽसि” त्यनेनोच्चजनसपत्किणस्ते न युक्तमिदमिति व्यञ्जितम् ।
तथा च प्राक्तनं पद्यम्—“न गणितं यदि ब्रह्म पयोनिधौ, हरशिरस्पावभू-
रपि विस्मृता” । गूढाभिसन्धिषु = गुप्तकृत्येषु । अल्पम् = सर्वकनिषा-
हायोग्यम् । नाचत्वं इव तदानौ दरिद्रा अलम्बभूतपश्वोद्गात्र कामपि लब्धः
स्वयं तस्याश्च जीवनं व्यर्थयन्ति स्मेति विशयते । साधारणी तवावस्था,
लोकोक्तिरियम् । अवस्था = दशा । वयोऽर्थकत्वे तु—“कैशोरं वयः” इत्यस्य
वैयर्थ्यापात इति ध्येयम् । खड्गधाराया अवलेहनम् = रसनयाऽस्तादनम् ।

हैं, मन खिन्न हो रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, हृदय क्षुब्ध हो रहा
है । तो यह कैसे है ! यह क्या है ! यह कहाँ से है ! अरे ! सचमुच इस
वीर बालक को भी शिकारी कामदेव ने अवसर पाकर धायड कर ही दिया ।

तब तक अकस्मात् “रघुवीर ! रघुवीर ! तुम शिववीर के दूत हो,
गूढ़ कार्यों में भेजे जाते हो, तुम्हारा वेतन अल्प है, स्थिति साधारण है,
खड्गधार की धार को चाटने की तरह अत्यन्त कठिन तुम्हारा काम है,

मनो धूर्णयन्ती सौन्दर्य-साराधतार-स्वरूपामैक्षिष्ट ।

अथ सा तु “सौवर्णि ! सौवर्णि ! तातस्त्वामाकारयति”—इति कस्यापि बटोरिव वाचमाकर्ण्य, “आम् ! एषा आगच्छामि”—इति मधुरमुदीर्य, उत्थाय, वेदिकातोऽवतीर्य, वाटिकायामेव दक्षिणतः सुधा-धवलमेकं गृहं प्राविशत् ।

रघुवीरसिंहस्य समीपत एव गतेति गमन-समये सचकितं सगति-स्वप्नं परिपृक्त-प्रोचं “कोऽयम् ?” इत्येनं क्षणमवलोकयामास । परतश्च “स्यात् कोऽपि” इति समुपेक्ष्य गृहं प्रविष्टेत्यपगोऽपि

त्यवस्थानितयामिषायम् । चुचुम्बयन्तीम् = चुम्बितुमिच्छन्तीम् । व्यष्टुम-भिलपन्तीमिति यावत् । कुसुमकुड्मलघूर्णनव्याजेन = सुमकलिकापरि-चालनकपटेन । धूर्णयन्तीम् = परिचालयन्तीम् । सौन्दर्यसारस्य = सुन्दरत्वातत्त्वस्य, अवतारस्वरूपाम् = देहधारिणाम् । पिण्डीभूतसौन्दर्या-मिति यावत् । आगच्छामि, वर्तमानकामोप्ये “वर्तमानवद्वा” सुधाधव-लम् = चूर्णकसितम् । चकितेन = विस्मयेन सह वर्तते यस्यां क्रियायान्तम् । सगतिस्वप्नम् = सगमनावरोधम्, परिपृक्तप्रोचम् = परिवर्तितकन्धरम् ।

धूरती हुई सौन्दर्य के सार की अवतार स्वरूपा उस (कन्या) को देखने लगी ।

और वह “सौवर्णि ! सौवर्णि ! पिता जी तुम्हें बुला रहे हैं” इस प्रकार किसी बटु की-सी आवाज सुनकर, “अच्छा आ रही हूँ” ऐसा मधुरता के साथ कह कर, उठकर तथा वेदी से उतर कर, वाटिका में हो-
; ण की ओर स्थित एक चूने से पुते हुए स्वच्छ घर में गुप्त गई ।

वह रघुवीर सिंह के पास से होकर ही गई । अतः उस समय उसे उसने कुछ चकित नेत्रों से निस्तब्ध हो, कुछ रुककर, गर्दन घुमाकर “वह कौन है ? इस प्रकार क्षण भर रघुवीरसिंह को देखा, फिर “कोई होगा” इसी प्रकार उसकी उपेक्षा करके घर में गुप्त गई । वह (उस

विषये]

चतुर्थी निभासः

जानो वशीकार-प्रयोग-प्रचारः ।

रघुवीरञ्च ततः प्रतिनिवृत्त्य, पुनः स्वाधिकृत-कोण-गोष्ठ-
मेवाऽऽयातः ।तत्र च गवाक्ष-जाल-प्रसारितैः राजन-मार्जनी-निभैः
कलानिधि-कर-निकरैः समूह संशोधित इषान्प्रकारे, पयः-
पयोधि-केनरिवाऽऽनृते शयनीय-पीठे उपविश्य, कदाचिदथ इय
मुखं विदधन्, कदाचित् कपोलं करे कलयन्, कदाचिज्जाला-क्रियाविशेषणानि । वशीकारप्रयोगप्रचारः = स्वायत्त-करणविधानप्रसारः ।
रघुर्विषयपरिचरम् ।

स्वाधिकृतकोणगोष्ठम् = निर्दिष्टत्वात्सत्सदनम् ।

गवाक्षजालप्रसारितैः = वातायनरन्ध्रभ्यासैः । राजतत्त्वेन राजवी =
सौम्यमयो मार्जनी = बहुहरा "साह" इति हिन्दो, तत्सुख्येः । कलानिधि-करनिकरैः = चन्द्रकिरणमयैः, समूह = सञ्चित । "एवञ्च कर"
इति भाषायाम् । संशोधिते = दृष्टोक्ते । "नृपपुत्रं भं तात तारका-
पुत्रु वाऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । पयःपयोधिफेनैः = धारवाधिविह्वलैः ।
आनृते = विस्तर्णे, शयनीयपीठे = पल्लवं । विदधन् = दृष्टांशः ।

"नामपस्ताच्छुरि"ति मुग्धनिषेधः । जालान्तरेण = वातायनरन्ध्रेण ।

पुष्क के छिप) एक ओर दृष्टय वशीकरण के प्रयोग पर अनुमान हो
गया ।रघुवीर वहाँ से लौटकर फिर अपने अधिकृत कोने के कमरे में हो
बैठा भाग्य ।ओर वहाँ पर लिवरियों की वाली से प्रविष्ट दाँतो की तरह के
समान चन्द्रमा की किरणों के समूह से एवञ्च कर के अन्धकार के साफ
सा कर दिखे जाने पर, मुग्ध-समुद्र के फेन का तरह लिते हुए दिना
पर बैठकर कभी नीचे की ओर मुँह लटकाना, कभी हाथ ।

न्तरेण तारकमण्डलमवलोकयन्, कदाचित्किमिति मृषा-चिन्तनैरित्यात्मनेवाऽऽत्मानं सान्त्वयन्, कदाचिन् 'निद्रे ! कुत इव विदुताऽसि ?' इत्यशान्तिं विधत्, पार्श्वतः पार्श्वे परिवर्त्तमानो होरामेकामयापयत् ।

ततश्च "अहह ! शिववीर-कार्येष्वसम्पादितमेकमवशिष्यते" इति किञ्चित् संस्मृत्येव, कशयेव ताडितः सपशत्थाय 'मन्दिर-पुरोहितः क ?' इति काञ्चिदापृच्छय, केनचिन्निर्दिष्टमार्गस्तस्यामेव पाटिकाया तदेव बालिकया प्रविष्टचरं गृहं प्रविशेत् ।

तत्र धेरुमिन् प्रकाण्ड-कोष्ठे निःक्षिप्तं यद्—एकस्यामारकूट-

तारकमण्डलम् = भनवम् । सान्त्वयन् = समझावत् । विदुतासि = पढावतासि । पार्श्वतः पार्श्वे परिवर्त्तमानः, रोदत्वापे लोके "करव बदलते हुए" इति समझिधोयते । लोकोक्तिः । होराम् = परिहाम् । अयापयन् = अत्यसावयत् । कशया = अथताडन्या, "चातुक" इति भाषा । सर्पादि = सहसा, निर्दिष्टमार्गः = प्रदर्शितमार्गः ।

प्रकाण्डकोष्ठे - विशाले कोष्ठे । "बड़े कमरे में" इति हिन्दी । आर-

माल रम्यता, कभी कभी के भीतर से तारामण्डल को देखता हुआ, कभी "एते व्यर्थ के विचारों से क्या लाभ" इस प्रकार स्वयं अपने को सान्त्वना देता और कभी "निद्र ! तू कहीं थली गई" इस प्रकार अपना-अपना होता हुआ, इधर-से उधर करबटें बदलता रहा । इस प्रकार एक दृष्टि बत गया ।

ततश्चान् "अरे ! शिवजी के कामों में एक अभी बाकी हो गई" इस प्रकार कुछ स्मरण-मा करके, गुरुपौरसिद्ध कोठ से प्रतीकित-सा तुरन्त उठकर "मन्दिर के पुजार को कहीं दे ?" इस प्रकार कुछ दौड़ा से दूढ़ कर किमा के हाथ मार्ग बदलावे जाने पर उठा बट्टिया में, दिन्ने यह कारिदा गई थी उसी घर में, प्रविष्ट हो गया ।

वही घर एक बड़े कमरे में देखा कि—दिवा की दवार में एक

चतुर्थी निधात.

हिन्दी]

गिरिजाजी प्रदीप एको नवलनि, पुन-काजामनाम्यनैकानि आम्भुनानि
 भारत-वेष्टनेषु बहुधा पुनकानि पोष्टिकां अधिष्ठापितानि, नाग-
 दन्तिकासु पीत-पद्मानि पट्टाम्बरानि च लम्बन्ते, एवमिदं शरावे
 ममोपात्रम्, लेखनी, पुरिका, गिरिकम्, उपनेत्रं चाऽऽयोजित-
 मिति। पात्रान्तरे च गदादिरे पूर्णम्, भाट्टे पात्र-वेष्टितानि नागवल्ली-
 शन, पुमानि, शङ्खला, देव-मुमुमानि, एलाः, जाति-पत्राणि,
 पूरे च विन्यस्तमिति। सम्मध्य एष च महोपबर्हमेकं पृष्ठ

हृत्दीपिकायाम् = पात्रविशेषदशिकायाम्। "दीपिः सिधामाहूट" इत्य-
 भाः, दीपिका = दीप-पापनाथं निमित्तं यस्तु। "दीपट" इति हिन्दी।
 भारतवेष्टनेषु = ईपट्टक-वन्धनवन्तु। "लाकभी का वेडन" इति हिन्दी।
 पोष्टिका अधिष्ठापितानि = उपवेशितानि, "अधिष्ठापितानि कर्म" इति
 कर्मवन्। शरावे = विस्तृत-राशे। "ठलनी" इति हिन्दी। गिरिकम्,
 विविक्तपादद्वय दूरीकरणार्थम्। पात्रान्तरे = तथाविधेऽन्यत्र। नाग-
 वल्लीदलानि = ताम्बूलवल्लीपत्राणि। "ताम्बूलवल्ली ताम्बूलो नागवल्ली"
 स्वयम्। पुमानि = कशुकाणि। शङ्खला = पुगकथा, "शरीला" इति हिन्दी।
 देवमुमुमानि = लवङ्गानि। एलाः = पुष्पीकाः, "पुष्पीका पन्द्रवालेका
 निपुष्टि-हुले" स्वयम्। जातिपत्राणि = मालतीपत्राणि। कपूरम् =
 वनसारः। महोपबर्हम् = महादुषधानम्। "मसनद" इति हिन्दी। सवा-

दीपक जल रहा है, कुछ और कास के अनेक आसन निछे हुए हैं, रक-
 वेडनी (लाकभी का वेडन) में बहुत-सी पुष्पकें चौकियों पर रखी हुई
 हैं, नृसिंही पर पीठी और दुपट्टें छटक रहे हैं, एक प्याले में दावात,
 कलम, चाकू, मोरु और चस्मा रखा हुआ है। दूसरे पात्र में कथा,
 बूना, गले कपड़े में लपेटे हुए पान, मुगारी, सट्टा, लवंग, इलायची,
 मालती के पंख और कपूर रखा है।
 उनके बीच में ही एक बड़े मसनद पर पीठ टेके हुए, पैरों को वे

पुनश्च तं प्रणम्य, जिगमिषन्तमुवाच, यत्—

“तावद् बहिरेवोद्याने पर्यट, यावद् हनुमत्प्रसाद-सिन्दूरं प्रेषयामि, यत्कृततिलको दुर्द्धर्षो भवति शत्रूणाम्” इति ।

स च तथेत्युक्त्वा बहिरागत्य पर्यटन् पूर्वेषुः सौवर्ण्यां सनाथितां वेदिकां समायातः, स्मृतवांश्च पूर्वदिन-वृत्तान्तम्, अवालोकयच्च सौवर्ण्यधुपित-चरं पापाण-मञ्चम् । तावन्निपुणं निरोक्ष्य दृष्टवान्-यदेका एक्यष्टिका मौक्तिकमाला तत्र पतिताऽ-स्तीति, ताञ्चोन्थाय तस्या एवेयमिति निश्चित्य, तस्यै समर्पया-मीति विचार्य, इतस्ततश्चक्षुर्निचिक्षेप ।

अथ व्यलोकयद्-यद् चाटिकायामेव कोशलाऽपि कदलीदल-पुटकमेकं घामकरे संस्थाप्य, दक्षिण-कर-पद्मवेन कुसुमपतङ्गान्

सनाथिताम्=अधिष्ठिताम् । सौवर्ण्या, अधुपितचरम्=पूर्व-मुपविष्टम् । पापाणमञ्चम्=प्रन्तरवेदिकाम् । एक्यष्टिका=एकावली, मालावितोषः, “एकावल्येक्यष्टिके” त्यमरः । निचिक्षेप=निक्षेपे ।

कुसुमपतङ्गान्=पुष्पभ्रमरिकाः । “तिलकी” इति हिन्दी ।

इन्धुक रघुवीर सिंह से कहा, “तब तक बाहर उद्यान में ही रहलिये, अभी हनुमानजी के प्रसाद का सिन्दूर भेजता हूँ जिसका तिलक लगा देने पर व्यक्ति शत्रुओं के लिए दुर्द्धर्ष हो जाता है ।”

रघुवीरसिंह ‘घटुत अच्छा’ कह कर, बाहर आकर, पतता हुआ, पिछले दिन सौवर्ण्य से सनाथ की गई चेदी तक आया, पिछले दिन के वृत्तान्त को स्मरण किया और जिस पत्थर की चट्टान पर सौवर्णी बैठी थी उसके दर्शन किये । ध्यान से देखने पर देखा कि मोतियों की एक एकलरी माला वहाँ गिरी पड़ी है, उसे उठाकर, यह उसी की है यह निश्चय करके, ‘इसे उसी को दे दूँ’ यह सोचकर इधर-उधर दृष्टिविधेय किया ।

उसके बाद उसने देखा कि कोशला भी बगीचे में ही बाईं हाथ में केके के पत्ते का एक दोना लिए, दाहिने हाथ से नितलियों को उड़ाकर,

कृत्य सदन्तिष्ठमागत्य, भीषणीविषं मानसं भित्तिच्छाद्यमान्तिष्ठ्य
नभस्त्रमाशं गच्छते प्राभिरातु, पवित्रमस्ति स्फुटनम-यौवनोद्दे-
स्यम-रहितानि च गच्छानि नान्धाभीन् ।

ततस्तस्मात् भीषेनीं त्राः प्रयागायाम्, स्थाप्य पुनर्मन्दिरमागत्य
देवशर्मणोऽन्यत्र मन्त्रादिनाऽऽनीतं सिन्दूरमादाय पुनरगमात्त,
मास्त्र-नन्दनं सीम्न्य तोरणदुर्गात् सिंहदुर्गं प्रत्यजे ।

इति चतुर्थो निषमः

इति प्रथमो विगमः

“मौनं स्वकारकात्” विमुक्तत्वात् । नभस्त्रमाशम् = मन्दिरशक्तिवोक्त-
कमपी पूजायामेवावस्थीन् । स्फुटनमस्य = भित्तान्नाशय्य, यौवनस्य =
ताकनस्य, उद्देस्य = आभिर्मारय्य, स्रग्मभिः = चिदैः, रहितानि =
शून्यानि, न अन्धाभीन् = गृह्यन् । मास्त्रनन्दनम् = आपुपुत्रम् ।

शाल-शान्त्र प्रसाचार्य पद-केन पं.मता ।

मगद-या गर्भजेन निर्द-भागवत-मुनुना ॥

पिडित्तिनाटि-शिष्येण रामब्र-ह्मणा मया ।

शिवदस-रूपादसन्त्य-पश-स्वावभाभिना ॥

पाण्डेयश्रीस्त्रीत्यराभिषेदेन सद-धरा ।

शिवरात्रस्य विजये वैभवन्ती विकाशिता ॥

इति श्रीशिवरात्रिविजयवैभवन्त्यां चतुर्ष्वनशामविवरणम् ॥

आदिमधिरामविवरण समाप्तम् ।

कर, उसके पास आकर, मन की दीवार पर सदाश का चित्र बना कर,
उस मुक्तामाला को उसके गले में डाल दिया, पर स्फुट यौवन के स्रष्ट
चिह्नों से रहित उसके पवित्र अंगों का स्पर्श नहीं किया ।

तदनन्तर, कोशज के मौनपूर्वक ही झुनरी ओर चले जाने पर, स्वयं
पुनः मन्दिर के द्वार पर आकर, देवशर्मण के प्रिय छात्र द्वारा लाये गये
सिन्दूर को लेकर, पुनः पीढ़े पर सवार होकर, इनुमानजी का स्मरण कर,
तोरण दुर्ग से सिंह दुर्ग की ओर चल पड़ा ।

शिवरात्रिविजय के चतुर्थं विश्वास का हिन्दी अनुवाद समाप्त ।

शङ्कर-ध्वनि-ध्वनित-दिगन्तरः फल-पटलाऽऽम्बा-चपलि-चञ्चु-
पतङ्ग-कुलाऽऽक्रमणाधिक-चिन्त-शास्त्र-शास्त्रि-समूह-व्याप्तः सुन्दर-
कन्दरः पर्वतखण्ड आसीत् ।)

यावदेष ब्रह्मचारी यदुरलिपुञ्जमुद्धृत्य कुसुमकोरकानवचिनोति;

प्रवाहेण, पूर्वतन्म=भरितम् । विशेषणार्थमानि चत्वारि सरसो विशेष-
भूतस्य । दक्षिणत=दक्षिणस्या दिशि । पर्वतखण्ड आसादित्यन्वयः ।
पर्वतखण्डः = प्रत्यन्तपर्वतः “टेकरी” इति हिन्दी । विशिनष्टि विशेष-
णत्रयेण—निर्झरस्य=प्रवाहस्य, “वारिप्रवाहो निर्झरो हर” इत्यमरः, शङ्कर-
ध्वनिता ध्वनितम्=नादितम्, दिगन्तरम्=दिक्प्रान्तभागी यस्य सः ।
शङ्कर इति अलङ्कारशुद्धिः । फलानां पटलस्य=समूहस्य, आम्बादेन =
मक्षण्येन, चपलिता = चञ्चलाः, चञ्चवः = चोटयः, “चञ्चुष्टिदमे स्त्रियौ”
इत्यमरः, येषां ते च ते पतङ्गाः=पक्षिणः, “पतङ्गो पक्षिसूरी च” इत्य-
मरः, तेषां कुलम्=समूहः, तस्याक्रमणेन, अधिकम्=अत्यन्तम्,
चिन्तताः = नम्रभूताः, शास्त्राः = शिक्षाः, “शिक्षा शास्त्रा शिक्षा लते”
इत्यमरः, येषां ते च ते शास्त्रिनः=वृद्धाः, “वृद्धो महीवदः शास्त्रो विद्वो
पादपस्तद्वि” इत्यमरः, तेषां समूहेन व्याप्तः = आवृतः । सुन्दराः =
शोभनाः, कन्दरा = गुहाः, यस्य सः । “दरी तु कन्दरो वा स्त्री” इत्यमरः ।
अथानुशासः, शब्दाण्डकारो गद्यो च रतिः ।

ब्रह्म = वेदः, तद्व्यपनार्थं ब्रह्मवि ब्रह्म, तच्चर्त्तानि ब्रह्मचारी । “ब्रह्म-
चर्यमहिता च” त्यागो तु यममेव विशेषस्य मैथुनव्यागम्यैव ब्रह्मचर्यपदवाच्यता ।
अलोनाम्=भ्रमराणाम्, पुञ्जः = राशिः, “रवात्रिकायः पुञ्जपक्षी” इत्य-

का सर सर ध्वनि से दिशाओं को सुगन्धित करनेवाली, फल खाने
... हो गई थीच बात पक्षियों के पुदक पुदक कर बैठने से और
... एक एक जाने वाली शास्त्राओं वाले पेड़ों से व्याप्त, तथा सुन्दर
... वाली एक पहाड़ी (या टेकरी) थी ।)

... ही हो वह ब्रह्मचारी बालक भीतों को ठहराकर, पूरक की बलियाँ

प्रथमो निश्वासः

विरामे]

सावन सस्यैव सतीर्थोऽपरस्तममानवयाः कम्पिका-रेणु-रूपित
इव इयामः, चन्दन-चचित-भालः, कर्पूरगुरु-क्षोद-चुरित-घशो-
बाहु-दण्डः, गुगन्ध-पटलेकप्रिद्रयप्रिय निद्रा-मन्थराणि कोरक-
निकुरम्यकान्नराज-सुनानि मिलिन्द-वृन्दानि सति सप्तपट सप्तपट
निवारयन् गौरयदुमेयमषादीन्—)

परः, तम्, अवधूय = निवारयं। सुसुमानां कोरकाः = कलिकाः, “कलिका
कोरकः पुमान्” इत्यमरः, तान्। अयचिनोति = संकलयति। सतीर्थः =
सदाप्यासी। “समानतीर्थे वासी”ति यप्रत्यये “तीर्थे य” इति सादेशः।
“सतीर्थोऽस्त्वेकगुरुव” इत्यमरः। तेन समानं घयः = अवस्था, यस्य सः।
सतीर्थं विशिनष्टि चतुर्भिर्विरोधैः। इयाम इत्याद्य विरोधणम्। स्वभावतः
कृष्णवर्णं तमुपेक्षते-कम्पूरिकाया = मृगनाभेः, रेणुभिः = रत्नोभिः, रूपित
इव = पुरित इव। चन्दनेन = गन्धसारेण, चचितम् = लिप्तम्, भालम् =
ललाटम्, यस्य सः। कर्पूरमय = पद्मसारस्य, अगुरोः = गुरुरस्य,
“अगर” इति हिन्नी, च क्षोदेन = चूर्णेन, चुरितम् = व्याप्तम्, घशोबाहु-
दण्डम् = उदरस्थशुब्रद्रवम्, यस्य सः। गुगन्धपटले = सौम्यसमूहैः,
निद्रया मन्थराणि = अन्तर्धानि। कोरकाणाम् = कलिकानाम्,
निकुरम्यकाणि = वृन्दानि, “निकुरम्य कटम्यकम्” इत्यमरः।
तेषाम्, अन्नराजे = अन्नतरे, सुनानि = ध्यानानि। मिलिन्दानाम् =
भ्रमराणाम्, वृन्दानि = समूहान्। उल्लिख्यप्रिय = जागरयति। अन्व-
यमनुगुण्यात् दशाख्यातम्। गुगन्धलोत्पन्न शिरेषाः इयामवदुःखरीरानुत्ति-

तोड़ने लगा, उसका सहपाठी और गमकपक दूसरा ब्रह्मचारी जो
कम्पूरी की बुकनी से सना हुआ सा सौंदर्य रंग का था, मस्तक पर चन्दन
लगाये था, और दशरथल तथा बाहुओं पर बपूर और अगर की बुकना
रखाये था—नौद से अलसाये और करियों के अन्दर मोये हुए भीरी को
गुगन्ध का गमक से बगाता हुआ सा, सटपट समीप आकर, उस गोरे
हालक को मना करता हुआ बोला—

अलं भो अलम् ! मयैव पूर्वमवचिनानि कृमुमानि, त्वं तु पिरं
रात्रावजागरीरिति क्षिप्रं नोत्थापितः, गुरुचरणा अत्र तडागतदे
सन्ध्यामुपासते, संस्थापिता मया निखिल्या सामग्री तेषां समीपे ।
यां च सप्तवर्षकल्पाम्, यावनत्रासेन निजज्ज्दं रुदतीन्, परम-
सुन्दरीम्, कलित-मानव-देहामिव सरस्वतीं सान्त्वयन्, मरन्द-

चन्दन-घनसार-वस्तूरिका-परिमलमाधाय पुष्पेभ्य उद्गीय तच्छरीरनिपतनो-
त्सुकाः सञ्जाता इति स्वाभाविकवार्तायां जागरणमुखेनापोन्वेषणम् ।

अलं भो अलम्, पुण्याश्च निषेधति । इतः परं काश्चित्स्वल्प-
जोषानपदाय वृत्तरु नाम गद्यम् । “अकटोराधरं स्वल्पसमामं वृत्तरु मनम्”
इति तल्लक्षणात्, एतदेव “अनाविद्धपटं चूर्णम्” इति वामनसूत्रे चूर्णरु-
नाम्नाऽभिहितम् । अजागरीः, “जाग्रु” पातोर्लुङि मिति रूपम् । सप्तवर्ष-
कल्पाम् = अष्टमातसप्तवर्षाम् । यवनेभ्य आगतो यवनानां वाट्यं यावनः,
स चामी त्रासस्त्रेन । यवनश्रवणशब्दो रसकृतमाहित्ये नमायाती । आग्नौ
वशिष्ठविश्वामित्रसमामे पेनुस्तनसमुत्पन्नो रुद्रः, परश्च तगरसमामे वशिष्ठ-
परित्वार्जितार्यधर्मेण सागरपारस्थशत्रिवेत्तिनि त्यक्तमहामहोपाध्यायपदवकाः
शक्तिसम्पदायाचार्याः श्रीपञ्चाननगर्करत्नभट्टाचार्याः । तन्मतानुसरणे
भारतममामनेभ्यो जवनशब्दप्रयोग एवोचित इति भाति । कलितः—
पातितः मानवो देहः, यथा सा, ताम्, मानवरूपेणाग्नीर्णां सरस्वती-
मिरेकुप्रेता । मरन्दन=पुष्परसेन, मधुराः = मिष्टाः, अत्र विरोपणम् ।
“अपि दत्तदायिन्द । स्वन्दमानं मरन्दम्, तत्र विमपि लिङ्गन्तो

वम माई बस । फूल मैने पहरे दी तोड़ रहे हैं । तुम रात में देर
तक जागने रहे थे इसीरिये मुझे बहती नहीं जगाया । मुह जा यहाँ
तालाब के किनारे मन्त्रोपासना कर रहे हैं । मैंने मारी सामग्री उनके
पास पहुँचा दी है । जिस, लगभग ७ वर्ष की अवस्था वाली, यवनों के
अप से निमग्नियाँ भर-भर कर रोने लगी, परम सुन्दरी, मानवशरीर धारण
के आई हुई सरस्वती के समान, कन्या को, दादत देधाने, मधुर अञ्ज

प्रथमो निश्वासः

अपः पाययन्, बन्दरगणहानि भोजयन्, त्वं प्रियामायाः
प्रयमनयोः मेघमधुना गदयति, वदयुद्धं च पुनस्तर्धय रोदि-
त, कल्पिमान्गणीयान्वेतस्याः पितरौ गृहं च-)

इति सधृत्य उष्णं निश्वास्य यायन् सोऽपि किञ्चिदुत्तुनियेप
अथदवस्मान् पर्यन्तनिगरे निपपान उभयोर्दृष्टिः ।

तस्मिन् पर्यन्ते आसीदेको महान्बन्दरः । तस्मिन्नेव महामुनि-
र्यं समाधी तिष्ठति स्म । कदा स समाधिमङ्गीकृतयानिनि कोऽपि
न येत्ति । प्रामाण्य-प्रामोण्य-यामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूज-

मन्तुं युञ्जन्तु नृणां इति पण्डितराजपदे प्रयुक्तोऽयं मरन्दशब्दः । मरम्=
भ्रमरमरणम्, शनि = रागद्वयति मरन्दः भ्रमरजीवनम्, मरन्द इति
त्युक्तिरन्वयमयस्य । पाययन्, निबन्ताच्छतरि । बन्दा = कर्षणो
प्राप्तविनेताः । "शाब्दकं बन्दमं ररम्" "बन्दमन्त्री मूलसत्यम्"
इति च वैजयन्ती । प्रियामाया = रात्रेः । "रात्रिस्त्रियामा धनदा
शपे" त्वमरेण स्तुत्यम् । अत एव यामप्रयमिति प्रहरणपर्यंकं
मन्त्रच्छन्ते । परिभार्गणीयानि=अन्वेदणीयानि । नपुंसकमनपुसत्वेनेत्येक-
देशः ।

पक्षमियेप = कथयितुमिच्छति स्म ।

समाधी=चित्तवृत्तिनिरोधात्मके योगे । प्रामण्य = प्रामाण्यः, 'हामर-
दार, बर्मान्दार', इति हिन्दा, ते च ते, ग्रामे भवा प्रामोण्याः=ग्रामदानिनः,
विशते भीर बन्दी के टुकड़े गिराते हुए, तुमने रात के तीन पहर पिता
दिये थे, यह इस समय सो रहा है, बागने पर फिर वैसे ही रोयेगा,
इसलिये उसके माता पिता भीर पर का पता लगाना चाहिये ।

यह सुन कर गर्म साँस लेकर, ज्यों ही उसने भी कुछ कहना चाहा,
त्यों ही अचानक वन दोनों की निगाह पहाड़ी की चोटी पर पड़ी ।
उस पर्वत में एक बहुत बड़ी गुफा थी । उसमें एक महामुनि समा-
लगाये थे । उन्होंने समाधि कब लगाई थी इसका पता किसी को

यन्ति प्रणमन्ति स्तुवन्ति च । तं केचिन् कपित्थ इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीपण्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति विश्वमन्ति स्म । स एवायमधुना शिखरादयसरन् ब्रह्मचारि-चटुभ्यामदर्शि ।

“अहो ! प्रबुद्धो मुनिः ! प्रबुद्धो मुनिः ! इव एवाऽऽगच्छति, इव एवाऽऽगच्छति, सत्कार्योऽयम् सत्कार्योऽयम्” इति तौ सम्भ्रान्तौ बभूवतुः ।

अथ समापित-सन्ध्यावन्दनादिक्रिये समायाते गुरौ, तदाजया

तेषां ग्रामाः=समूहाः । श्रुत्वतुमास-प्रदर्शनमात्रफलकोऽयम् । सरसे रौद्रादिरसाभावयति प्रकृते दोषत्वमेतस्येति केचित् । तम्=समाधिनिरतम् । कपित्थ-लोमशजैगीपण्यमार्कण्डेयाश्चिरञ्जीविनो महर्षयः । “नारद इत्यवोषि स” इत्यादि-वदित्तिना निपातेनाभिहितत्वाच्च तेषां द्वितीयान्तता विश्वमन्तिक्रियाकर्मत्वे-ऽपीति बोध्यम् । गृहीतृमेषादेकस्यैवानेकपोल्लेखादुल्लेखालङ्कारः । अदर्शि =दृष्टः । कर्मणि लुटि रूपम् ।

सत्कार्यः=आदरणीयः । सम्भ्रान्तौ=क्षुभितौ । बहोः कालात् वन्दराया निवसन् मुनिरकस्माद्बहिरायात इति ह्योद्वेगेण व्याकुलौ बभूवतुः । अत एव च तदुक्तिषु साधेदता ।

समापिता सन्ध्यावन्दनादिक्रिया येन सः, तथामृते । आदिना स्वेष्ट-

कर्मा-कर्मी ग्राम-प्रधान और ग्रामीण उनका पूजन, वन्दन और स्तवन कर आते थे । उन्हें कोई कपित्थ, कोई लोमश, कोई जैगीपण्य और कोई मार्कण्डेय समझता था । दोनों ब्रह्मचारियों ने, इस समय, उन्हीं को शिवर से उतरते देखा ।

“अहो ! मुनि जग गये ! मुनि जग गये ! इसां ओर आ रहे हैं, इसी ओर आ रहे हैं, इनका सत्कार करना चाहिये, इनका सत्कार करना चाहिये” यह कहते हुए वे दोनों शीघ्रता करने लगे ।

तदनन्तर, सन्ध्यावन्दन आदि कृत्य समाप्त कर के गुरु के आ जाने और उनकी आज्ञा से गोरे ब्रह्मचारी के, सन्ध्यावन्दन आदि निवर्तन

मायनाम्” इत्यादिद्वय छात्रेषु विद्युष्टेषु, अज्ञानान्नरं छात्रैर्नृतेन म
भीता सवेगमत्युष्णं दीर्घं निश्चमनी, मृगोव व्याघ्राऽऽघ्राता, अ
प्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः, कन्यद्वेष्टा अद्वे निषाय समानीता । वि
न्वेपणेनापि न तस्याः सहचरी सहचरो या न प्राप्त । तास्य चन
कलयेव निमिताम्, नयनीतेनेव रचिताम्, मृणाल-गौरीम्, कुन्
कोरकाप्रदतीम्, सओमं रुदनीमयलोक्याऽऽम्नाभिरपि न पामि

कन्दनं विशिनष्टि—अम्पष्टानि अक्षराणि, यस्मिन्नात् । कम्पमान
निःश्वासाः, यस्मिन्नात् । श्रुथन = शिथिलः, कण्ठः, यस्मिन्नात्
अत्यवधानेन = विशेषध्यानेन, श्रुथम् = श्रवणाईन्, तस्य भावस्त
सम्मात्, हेतो पञ्चमी । अतिशयेन दूरं दक्षिणम्, तस्य भाषा दक्षिण
अनुमिता = विशता, दक्षिणता = अनिदूरता यस्य तत् । आदिद्वय
आशय्य । व्याघ्रेण = शार्दूलेन, आघ्राता = आक्रान्ता । उपमालङ्कारः
सवेपथुः = सकम्पा । एकेनाद्वे निषाय कन्यका समानीतेति स्थ
क्रियापदद्वयम् । प्रधानक्रियानिरूपितकर्मत्वाभिधानेऽप्रधानक्रियानिरूपित
कर्मत्वमनभिहितमप्यभिहितकल्पकाद्यत इति महामाष्ये ध्वनितम्,

प्रधानविषया शक्तिः प्रत्ययेनाभिधीयते ।

यदा गुणे तदा तद्वदनुक्ताऽपि प्रतीयते ॥

इत्यादिना वाक्यपर्याये स्पष्टकृतञ्च । नयनीतेनेव = हैपञ्चनीतेनेव । “मकखन
इति हिन्दी । मृणालमिव = कमलदण्ड इव, गौरीम् = श्वेताम्, कुतोपमा
कुन्दकोरकाः = माष्यकलिकाः, तेषाममार्णवं दन्ता यस्याः सा ताम्

है ! क्या बात है ! देख कर पता लगाओ” यह आश देकर, छात्रों के
भेजा और क्षण भर बाद ही एक छात्र, डरी हुई, जल्दी-जल्दी ग
और लम्बी साँसे ले रही, बाप से आक्रान्त हरिणा के समान, औंत्तुओं से
नहाई हुई और चौपती हुई एक यालिका को गोद में उठाकर लाया
चन्द्रमा की कलाओं से रची गई सी, मकखन से बनाई गई सी, कमल
नाल के समान गोरी और कुन्दकलिका के समान दाँतो वाली उस

विपरीत इसके, गिवराजविजय में, भाषा उत्तमोत्तम, ओज-
 मयिनी भी, अर्वाचन भी, सुबोध भी, यथास्थान, यथावसर, उद्दाम
 भी, कोमल भी। नवोरम भी इसमें बहुत औचित्य और दक्षता से
 रक्ते हैं, वीररम, जिसका अर्वाचन सस्कृत-साहित्य में प्रायः अभाव
 ही है, वह इस ग्रन्थ में प्रधान है, शृङ्गार भी है, और सर्वथा
 मात्सरिक, मुश्लोल, कोमल, प्रीति रूप, कही भी असंगोलता आने
 नहीं पाई है; युद्धों के प्रसंग में रोद्र, भयानक, बीभत्स का, और
 वीर के सम्बन्ध में अद्भुत का, रूप बहुत पर्वाप्त मात्रा में दिया
 दिया है। राजनीति और चार-चातुर्य और रणकोशल का भी
 निरूपण बहुत सुन्दर है। सर्वोपरि गुण इसका यह है कि विषय
 ऐतिहासिक, अधिकांश वास्तविक है, कपोल-कल्पित नहीं, और
 देशभक्ति, जन्म-भूमि-भक्ति, प्रजा को राज-भक्ति, राजा को प्रजा-
 भक्ति, दोनों को धर्म-भक्ति, और भारतीय-राष्ट्रीय-भाव में भरा है
 जिन भाव का अर्वाचन मन्दुन ग्रन्थों में मयवा अभाव है।

मे जान नहीं सकता कि क्या पण्डित मण्डली में अदानीता
 पूर्ण 'दृष्ट-आदृष्ट-नद-गुण' भाषा किरान आदि काव्या को इतनी
 मद्तिमा है और इस रत्नभूत ग्रन्थ में ईर्ष्या नहीं तो विमृशता है।
 इसका विद्वान् अधिक प्रचार हो जाना अच्छा है—

भगवानदास—

गोदधु मदन-बाष्पाभि ।

अथ "बन्धके ! मा भेदी, पुत्रि ! त्वां मातुः समीपे प्राप्य-
 दास्य, दुरितम् । त्वं मा मद, भगवति । भूद्वय विद्विष्य, पिब
 दास्य, त्वं तव भगवः, यन् वयं विद्विष्य तदेव वारिध्याम्, मा मम
 गोदमे प्राप्याम ममपदवीमारोपय, मा मम गोमलमिदं गरीरं
 गोवन्ध्यालावलीटं वार्याः" इति गदगधा बोधनेन कथमपि
 मातुडा वारिध्या दुग्धं पीठवती । ततश्च मया मोहं उपवेश्य,
 "वारिधके ! कथय कते पितरौ ? कथनेतन्मिमाभममानं समायाता ?
 किं ते वदस्व ? कथमरोहो ? किं वारिधसि ? किं कुर्म ?" इति
 आत्मम् । "ममा-द्वयद्वयवपारादेभ्यो" उि द्वादेरी, उमिदन्तत्वाद

हीर । ममोभय-साधयसम् ।

मा भेदी, "वारिधुर्" "म माद्वय" इत्यग्निदेवः । मा
 मद, निपचापंकोष्ठ मायन्ती न तु माद्व, अत एव मोह । प्राणान्-भगवन्
 "पुत्रि नृ-वसवः प्राण" इत्यमरः । आरोपय, "मोहोत्तरे कर्त्तुं" ति कर्त् ।
 गोवन्ध्यालावलीटम्=गोवन्ध्यालावलीटम्=गोवन्ध्यालावलीटम् । मोहोत्तरे=मोह । सुम्भतया=

वारिध्या बो ध्यादुक्त गोवन्ध्यालावलीटं देव, एव मोह भो भवने भगिन् न
 गोवन्ध्यालावलीटम् ।

उत्तरे वाद "भेदी इति मत, द्या तुहं मां के पास पहुँचा दने,
 देव अग्रजोष्ठ मत करो, गन्ता विधिया कुछ खाओ, दूध पियो, ये तुम्हारे
 भाई हैं, जो कुछ तुम करोगा हम वही करेंगे, ये-येकर प्राणी को संदेह
 से मत दालो, इस कोमल शरीर को धोकापि का खरी से मत छुड़-
 काओ" इस प्रकार द्वादी तर्क से समझाने-बुझाने पर किसी प्रकार
 आश्रय हो उस वारिध्या ने कुछ दूध पिया । तदनन्तर, मैने उसे गोद में
 लेकर पूजा, 'बो' कहताओ तुम्हारे माता-पिता कहाँ रहते हैं ? तुम इस
 आश्रम के किनारे कैसे आ गई ? तुम्हें क्या पत्र है ? तुम रोता क्यों थी ?
 क्या प्यारता हो ? हम तुम्हारे लिए क्या करें ? भेदी क्या होने के कारण

पुष्टा मुग्धतया अपरिक्लित-वाक्पाटवा, भवेन विशिधिलयचन
 विन्यासा, लज्जया अतिमन्दम्यग, शोकैक रुद्ध रुग्णा, चकितचकितेव
 कथं कथमपि अवोधयद्मान यद्-एषा अस्मिन्नेदीयस्येव प्राप्ते यस्तु
 कस्यापि ब्राह्मणस्य ननयाऽग्नि । एषां च सुन्दरीमाकलय्य कोर्जा
 यवन-ननयो नदीनद्यान्मानुहन्मादाच्छिर्य क्रन्दन्ती नोत्थाऽपसमार ।
 (ततः काञ्चिदध्यानमतिक्रम्य यावदासिधेनुकां मन्ददृश्यं विभीषिक
 याऽभ्या कन्दन-कोलाहलं श्रमयितुमिवेष; तावदस्मात्कोर्जा
 काल-कम्बल इव भल्लूको घनान्तादुपाजगाम । दृष्ट्वैव यवन-नन

शालस्वभावादकृतया । अपरिक्लितम्=अविज्ञातम्, वाक्पाटवम्=भाषण
 चातुर्यं यथा सा । भवेन=भङ्गा । हेतोर्तृतीया । विशिधिलः=अस्तव्यस्तः,
 यचनविन्यास=भाषणम्, यस्याः सा । चकितचकितेव=अतिभीतेव ।
 नेदीयासि=अतिनिकटे । “अन्तिकवाटयोर्नेदसाया” वित्यन्तिकत्वं
 नेदादेशः । आकलय्य=निधित्य । इयं न ब्राह्मणतनया किन्तु धात्रि-
 तनया स्नातु च गता न मात्रा सह, अत्र तु दात्वा, पुरोहितं पितरं दासो च
 मातरं मेन इत्यग्नेतनकथया स्पर्शाभविष्यति । असिधेनुकाम्=धुरिकां ।
 “धुरिका चासिधेनुके” त्वमरः । विभीषिकया=भयप्रदर्शनेन । काल-
 आसी कम्बल इति कर्मधारय । कृष्णवाची कालशब्दः । कालस्य=यम-
 स्य कम्बल इवेति वा । शाल्मलितरुल्लोके “सैमर” इति निगद्यते ।

भाषणवातुरां से एकदम अरिचिंत, भय के मारे अस्त-व्यस्त शब्दों में बोलने
 वाली, लज्जा से धीमे स्वर और शोक से रूँधे गले वाली, अत्यन्त चकित
 हुईं सां इस बालिका ने बड़ी कठिनाई से हमें बताया कि यह समाप के हो
 गाँव में रहनेवाली किसी ब्राह्मण की कन्या है । सुन्दर देखकर, कोई
 सुसलमान का लड़का, नदी के किनारे से, माँ के हाथ से छीनकर,
 रोती बिल्पती हुई इसको ले भागा । कुछ दूर आकर उसने, धुरा
 दिखा कर, डर कर, इसको चुन करना चाहा, इतने में ही एकाएक काले
 कम्बल सा एक रीछ जंगल के किनारे से उभर आ निकला । उसे देखते

ने]

उसी तर्जब त्यक्त्वा कन्यकामिसा शास्त्रलितरुमेकमारोह ।
प्रतनया चयं पलाश-पलाशि-धेण्यां प्रचिदय घुगाक्षरन्यायेन इत
य समायाता वायद् भवेन पुना रोदिदुमारन्धवती; तावदस्मच्छा-
येनैवाऽऽनीतेति ।

तदाकण्यं कोपज्जालाज्वलित इव योगो प्रोवाच—“विक्रमराज्येऽ-
पि कथमेव पातकमयो दुराचाराणामुपद्रवः ?” ततः स उवाच—
महात्मन । पाधुना विक्रमराज्यम् ? घोरतपक्रमस्य तु भारत-
मुखं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदशशतकानि व्यतीतानि ।
पाधुना मन्दिरे मन्दिरे जयत्रय-ध्वनिः ? क सम्प्रति तीर्थं तीर्थं

पलाशाः = किशुकाः, ते च ते पलाशिनः = तरुः, तेषां धेण्याम् = पद्वी
पलाशानि पत्राणि वा, “पत्रं पलाश उदनम्” इत्यमरः । घुगाक्षरन्यायेन,
तद्वेषकैः कृमिभिः काष्ठानुवेष्टे क्रियमाणे यथाऽकस्मादधरमिव प्रतीयते,
इथा यथाविलिखित-कार्य-सिद्धिस्तपेत्यमभिधीयते । पुना रोदितुम्, “रो-
रि” इति लोपे “दूलांवे पूर्वस्य दीवाऽण” इति दीर्घः ।
विरहय्य = परित्यज्य । सप्तदशशतकानि, शिवरात्रसमयवचना-
यमिदम् । शिवरात्रकालिकपवनदुष्पचापान्वर्णयति—ववेत्यादि । मठे मठे =

हो वह मुसलमान का लटका, इस लटकी को वहीं छोड़, एक सेमर के
हृद पर चढ़ गया और यह माछण-वालिका पलाश वृक्षों के छर-
भुट में प्रवेश कर घुगाक्षर न्याय से दूधर आकर मारे भय के पुनः रोने
लगी, इसी बीच हमारा छात्र इसे यहाँ ले आया।

यह सुनकर प्रोवाचि की लपटों से प्रदीप्त हुए से योगिराज बोले—
“विक्रमादित्य के राज्य में दुष्पचारियों का यह पापमय उपद्रव कैसा ?”

तदनन्तर ब्रह्मचारी के मुख ने कहा—“महात्मा जी, अब विक्रम का
राज्य नहीं रहा । और विक्रमादित्य को हो भारतभूमि को छोड़कर गये
सब्रह्म छोड़ बर्ष व्यतीत हो गये । अब मन्दिरों में जय-जयकार नहीं । तंघों

घण्टानादः ? काशापि मठे मठे वेदघोषः ? अद्य हि वेदा वि-
 वीथीषु विश्लिष्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पु-
 णानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा
 भर्ज्यन्ते; “कचिन्मान्दिराणि भिद्यन्ते, कचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते,
 कचिद्वारा अपह्रियन्ते, कचिद्वनानि लुण्ठयन्ते, कचिदार्त्तनादा
 कचिद् रुधिरधाराः, कचिदग्निदाहः, कचिद् गृहनिपातः” इत्ये-
 श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः ।

प्रतिच्छात्राल्पम् । “मठरञ्जायादिनिलय” इत्यमरः । वेदाः=वेदपुस्तकानि ।
 विच्छिद्य=विगत्य, वीथीषु=पथेषु, उद्धूय=उत्तोल्य । धूम ध-
 ध्वजो येषां ते तेषु=वह्निषु । ध्मायन्ते=स्वात्यन्ते । पुराणानि=
 ब्रह्मवेत्तादीनि । पिष्ट्वा=चूणाकृत्य । भाष्याणि=सूत्रव्याख्यानादि-
 वात्स्यायनादिनिर्मितानि । भाष्येषु=भर्जनपात्रेषु “ज्ञांवेज्ज्वरीषं भाष्ये-
 ने” इत्यमरः । “भाह” इति हिन्दी । दाराः=भाषाः । इ विदार-
 इत्यस्माणिब्रन्तात् “दारबारी कर्तारिणि दुह् च” इति षम्, “दाराधत्वा
 दारागृहीतं ब्रुवन्” ।

कोडा हारा तथा दारा त्रय एते यथाक्रमम् ।

कोडे हारे च दारेषु शब्दाः प्रोक्ता मन्त्रपिभिः ॥

इति हेमचन्द्रानुसारेण दारन्तोऽप्ययम् । यथा च “दारा त्रय” इति
 पदे दारणे तथा यच्चन्तस्वेक्यपत्तादिभ्यश्चि प्रयोगस्तद्विशेषोऽवधार्यते । कापुने
 त्याग्य परित इत्यन्तं समता नाम गुणो दण्डिमते । प्रसारस्तु सर्वसम्मतः
 दारिदिनी ।

मैं घण्टा निनाद करीं । मठा में वेदध्वनि करीं । आज तो वेद का पुस्तक
 घड़-घड़ कर सड़ही पर रिलेयी जाता है, धर्मशास्त्र के ग्रन्थ अलु-अलु
 कर भाग में छींक जाने हैं, पुराण की पुराई पाथ कर पानी में बँक
 जाता है और भाष्यग्रन्थ तोड़ मरोड़ कर भाड़ी में खींक जाते हैं । ब्र-
 त्तिन्दर टूट जाने हैं, कहीं दुलही गृह छोड़े जाने हैं, कहीं छियां का भ-
 ह्य किता खट है और कहीं पनमण्डल गूदा जाता है । कहीं कहीं

प्रथमो निश्वासः

कण्यं दुःस्वितश्चकितश्च योगिराडुवाच—“कथमेतत् ?
पर्वतीयान्छकान्विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानी-
श्रीमानादित्य-पदलान्छनो वीरविक्रमः । अद्यापि तद्विजय-
मम चक्षुषोरग्रत इव समुद्रधूयन्ते, अधुनापि तेषां पटह-
गदीनां निनादः कर्णशृङ्खली पूरयतीव, तत्कथमद्य वर्षाणां
श-शतकानि ध्व्यतीतानि” इति ?
ततः सर्वेषु स्वप्नेषु चकितेषु च ब्रह्मचारिगुरुणा प्रणम्यं-
तम्—

“भगवन् ! यद्-सिद्धासनेनिरुद्ध-निश्वासेः प्रचोदितकुण्डलिनी-
पर्वतीयान्-पर्वतप्रान्तराणाम् । स्वराजधानीम्-उज्जयिनीम् । आदित्य-
पदलान्छनः = आदित्यसद्विभूषितः । सप्तबाहो लान्छनशब्दः “कलङ्काङ्की
लान्छनं च चिह्नं लक्ष्यं च लक्षणम्” त्वमयः । समुद्रधूयन्ते = कम्पमाना
वेद्यवन्ते । पटह-गोमुखादीनाम् = वाद्यविशेषाणाम् । पटह-नगायः ।
गोमुख = गुरुरी इति हिन्दी । भाविशालङ्कारोद्भातस्य प्रत्याधायमानत्वात् ।
भवाटगौ = योगनित्यैः, कालम्य वेगः = गतिर्न शायत इत्यन्वयः ।
भवाटगान् विनिनष्टि-बद्धसिद्धासनम्-योगशास्त्रेण आसनविशेषो वैश्वः ।

कन्दन है ठी कही रुधिर को पाया, कही अग्निकाण्ड है और कही पर-
ज्वल है । चारों ओर यही गुनगुन है और यही दिलाई देता है ।
यह मुनकर विजय और विस्मित हुए योगियाब ने कहा—“यह कैसे ?
श्रीमान्, आदित्यसद्विभूषित कीरवर विक्रम अपनी कल ही पर्वत प्रान्त
निवासी राज्यों को घातकर, महान् अवजयकार के साथ अपनी राजधानी
उज्जयिनी आये है । आज भी उनको विजयताकाई मेंरे नेत्रों के सामने
जराय ही रहा है, इस समय भी उनके नगादों, गुरुरी आदि पात्रों को
स्वनि मेंरे कर्णदिवरों को पूर्ण ही कर रहा है, फिर आज सप्तर ही वर्ष
कैसे घात गये ?”

योगियाब के यह पवन मुनकर सबके लक्ष्य और विस्मित हो जाने
पर, ब्रह्मचारी के मुख ने प्रणाम कर कहा—“भगवन् ! विद्वत्सुख ही

कैर्ध्वजित-दशेन्द्रियैरनाहत-नाद-तन्तुमवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संतुष्टं
चन्द्रमण्डलं भित्त्वा, तेजःपुञ्जमधिगम्य, सहस्रदलकमलमग्नान्
प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युञ्जयैरानन्द-

निरुद्धाः = अन्तर्निषमिताः, निश्वासाः = प्राणा यैस्तेः । प्रयोधिता =
उद्योतिता, कुण्डलिनी = पराशक्त्यभिधेया नाडोरुपा प्रधानमक्षिप्त-
नम्, यैस्तेः । विजितानि = वशंकृतानि, दशेन्द्रियानि यैस्तेः । द-
शानि-नाद-वायुस्थानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, चक्षुः-भोज-माण-रसन-त्वगादयानि
पञ्च शानेन्द्रियाणि । अनाहतध्वासी नादः तस्य तन्तुं = तन्तुद्वयां दूर-
वरयाजनिर्गम । मुमुष्णामध्ये रिपुलं दुरीवं पद्मनाहतनाम्ना योगदाने
प्रतिदनं, तदुपो नादोऽनाहतादः । आज्ञाचक्रम् = भ्रुवोर्मध्ये दिश-
न्नामकं चक्रम् । मातृदय = प्यानावलयभवनं कृत्वा । चन्द्रमण्डलम् = ततः
पर्यां योऽवदश मकं चक्रम् । तेजपुञ्जम् = सोमचक्रवर्तिन महाप्र-
णम् । सहस्रदलकमलस्य = ब्रह्मवर्तिनः सहस्रचक्रस्य । परमात्मा-
नम् = पर ब्रह्म । तत्रैव = ब्रह्मणि । रममाणैः = विहरन्ति । अनिर्वचन-
मानन्दानुभूतिरिति यावत् । मृत्युञ्जयैः = सप्तर्षीकृष्णार्जुनैः,
मानन्दमायस्वरूपैः = मानन्दमये ब्रह्मणि कृत-गत स्वकरीः । यन्तु योग-
यन्त्रादयानिदानीं यन्त्रानामुपादानं तज्ज्ञाननिष्ठस्य योगजनक नि-

प्रथमो निधासः

अथ रूपैर्ध्वानावस्थितैर्भयादस्यैव कालवेगः । तस्मिन् समये
 तना ये पुरषा अवलोकित्वा तेषां पञ्चाशत्समोऽपि पुरषो नावलोक-
 यन्ते । अथ न तानि स्त्रोताभि नदीनाम्, न म माधा नगराणाम्,
 मा आकृतिर्निरीयाम्, न मा मान्दृता विपिनानाम् । किमधिकं
 प्रथमाधो भारतपर्यन्तपुना भव्यादस्यैव सम्पन्नमस्ति ॥

इदमावश्यं विज्ञानिमन्त्रेण परितोऽवलोक्य च योगी जगत्-
 "मायं न तस्मिन् समये वेगः । योषिष्ठिरे समये कलित-
 समाधिरहं वैक्रम समये उदयधाम् । पुनश्च वैक्रम समये समाधिमा-
 वन्द्य अस्मिन् दुराणामये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि । अहं पुनर्गत्वा

स्वगत तददोषदुष्टमित्यिति—तत्र, अथत्यगदर योगशास्त्रोक्त-
 मरे पुरुषावस्थावत्कालोदयधनेष संज्ञितमित्याद्य । अत एव "न सा
 दा न तच्छास्त्रम्" त्यादिना सादित्यस्य व्युत्पत्तिरिति तदर्थस्य सर्वमप्ये-
 विचिन । अथमन्यथा "वृद्धिर्वा प्रकृतेः पृथग्" त्यादीनां "वागवावि-
 त्वादि" त्यादीनाञ्च न तदोषदुष्टमित्यन्यमसंशयोक्तम् ।

पञ्चाशत्समः = पञ्चाशत्समपूर्वः । केनलिकन्ताव-पूर्वोऽपि ।
 योषिष्ठिरे = पुरिष्ठिस्तस्य समयो योषिष्ठिरस्मिन् ।

महात्माजी को समय का वेग प्रतीत नहीं होता । उस समय आपने बिन
 लोगों को देखा होगा, उनको पचासवाँ वर्षी का पुरुष भी आज नहीं
 दिखाया देता । आज नदियों के बें खोत नहीं रहे, नगरी को बर स्थिति
 नहीं रहा, पर्वतों का बर आकार नहीं रहा और बगडों को बर गहनता
 नहीं रहा । अधिक क्या कहें भारतवर्ष इस समय दूसरा सा ही हो
 गया है ।

पर पुनश्च कुछ मुश्किलें हुए हैं, चारों ओर देखकर, योगिजन
 बोले—“सबसे मुझे समय के वेग की प्रतीति नहीं हुई । योषिष्ठिरे के
 समय में समाधि लगा कर मैं विषम के समय में जागा था, और पुनः

समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत्सङ्क्षिप्य कथ्यतां का दश भारतवर्षस्येति”—

(तत्संश्रुत्य भारतवर्षीय-दशा-संस्मरण-संजात-शोको हृदयस्थ-प्रसाद-सम्भारोद्गिरण-श्रमेणैवातिमन्थरेण स्वरेण “मा स्म धर्मध्वंसन-घोषणैर्योगिराजस्य धैर्यमवधीरय” इति कण्ठं रुन्धतो वाष्पान् विगणप्य, नेत्रे प्रमृज्य, उष्णं निश्वास्य, कातराभ्यामिव नयनाभ्यां परितोऽवलोक्य, ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत—)

(“भगवन् ! दम्भोलिघटितैर्य रसना, या दारुण-दानवोदन्तो-

भारतवर्ष-सम्बन्धिभ्यां दशायाः संस्मरणेन सञ्जातः शोको यस्य सः । हृदयस्थो यः प्रसाद = प्रसन्नता, तस्य सम्भारः = अतिशय, तस्योद्गिरणे = वमने यः श्रमः, तेनेवेत्युत्प्रेक्षा । धर्मस्य = श्रुतिप्रतिपाद्यस्य यद् ध्वंसनम् = उन्मूलनम्, तस्य घोषणैः = कथनैः ।

दम्भोलिघटिता = वक्त्रमयी ।

“दम्भोलिघटितैर्य” त्यमर

दारुणानाम् = भयानकानाम्,

दानवानाम् = म्लेच्छानाम्,

उदन्तस्य = वृत्तान्तस्य । “वार्तां प्रवृत्तिवृत्तान्त उदन्तः स्यादि” त्यमर

विक्रम के समय में समाधिस्थ होकर इस अनाचारमय समय में जागा हूँ । मैं फिर आकर समाधि हो सगाऊँगा, किन्तु तब तक संसार में बताइये कि भारतवर्ष की क्या दशा है ।

यह सुनकर भारतवर्ष की दुर्दशा के स्मरण से ब्रह्मचारी के गुरु का शोक उमड़ आया । मानो हृदयस्थित ह्वांतिरेक के प्रकाशन करने के धर्म से धीमे पड़ गये स्वर से, ‘धर्मरिपुंस की कथाओं से योगिध्वज का धैर्य मल दिगाओ’ यह कहने हुए से गंदा कँपने वाल आँसुओं की पर-बाह न कर, नेत्र पीछे कर, गरम हाँस लहर, कातर नेत्रों से घायी ओर देख कर, ब्रह्मचारी के गुरु ने कहना प्रारम्भ किया—

! “भगवन् ! मेरी यह आँख यत्र से बनी है वो भीषण म्लेच्छों के

प्रथमो निभासः

जीनं दीप्यते, लोहसारमयं हृदयम्, यन् संस्मृत्य यायनान्तर-
द्वारान् दुराचारान् शतधा न भिद्यते, भस्मसाध न भवति ।
गममान्, देव्यापि जीवामः, श्रिसमः, विचरामः, आत्मन
तत्त्वब्रह्मविद्याभिमन्यामहे—”

उपक्रमममुमाकर्ण्य अवलोक्य च गुनेर्विमनायमानं हरिद्राद्य-
क्षालितमिव पद्मम्, निपतद्गिरिषिन्दुनी नयने, अश्रित-रोम-
कञ्जुरं शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भग्नमानस्य स्वरम्, अवा-
गच्छन् “मकलानयमयः, सकल-वञ्चनामयः, सकलपापमयः,
मकलोपद्रवमयश्चायं वृत्तान्तः”—इति, “अथ एष तत्तमरणमात्रेणापि

उद्गोर्णे = रूपी, लोहसारमयम् = भयोनिर्गतम् । सखलं पद्मः
पारसखलः, तान् । एवञ्जन्तादित्वात्सखलस्य परित्यागः । पारसख-
लान्तरम् । शिरोध्वनिभन्तादित्वात्सखलस्य परित्यागः । पारसख-
लान्तरम् । शिरोध्वनिभन्तादित्वात्सखलस्य परित्यागः । पारसख-
लान्तरम् । शिरोध्वनिभन्तादित्वात्सखलस्य परित्यागः । पारसख-

विमनायमानम् = दुर्नयमानम् । हरिद्रा = मृदालवर्ण, तदुद्गोर्णे =
उद्गोर्णे, क्षालितमिव = जीवमिव । उद्गोर्णे । निपतन् = पतन्,
गिरिषिन्दुः = अमुकान्ता पान्ती ते । अश्रितरोमकञ्जुकम् = सरोपा-

वृत्तान्त के वर्णन से कष्ट नहीं जाता, मेरा हृदय लोहे का बना हुआ है,
जो यवनो के हजारों दुष्टचारों का स्मरण कर टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाता
और जलकर राख नहीं हो जाता । विकार है हम लोगों को, जो भाव भी
बढ़ते हैं, भाँस लेते हैं, हथ-उपर घूमते हैं और अपने को आपों का
बराबर मानते हैं ।”)

इस उपोद्घात को सुनकर वीर ब्रह्मचारी के गुरु के हस्ती से रौने
गुच्छ से (पकड़े) उदास चेहरे, आँखें समाते नेत्रों, रोमाञ्चित शरीर, पक-
पकटे ओठ और लड़खड़ाते स्वर से, योगिपुत्र समस्त मनो कि यह साध
सुनकर अतृप्त, वञ्चनाओं तथा पाप और उपद्रव की घटनाओं से भय

वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण, विद्याया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्र भवति वीरविक्रमादित्ये, शनैः शनैः पारस्परिक-विरोध-विशिथिलीकृत-स्नेहवन्धनेषु राजसु, भामिनी-धूमङ्गा-भूरिभाव-प्रभाव-पराभूत-वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ-चिन्ता-सन्तान-चित्तानैकतानेष्वमात्यवर्गेषु, प्रजं साम्राज्येषु प्रभुषु, “इन्द्र-स्त्वं धरुणस्त्वं कुबेरस्त्वम्” इति वर्णनामात्रसत्तेषु युधजनेषु, कञ्चन गजिनी-स्थाननिवासी महामदो यवनः ससेनः प्राविशद् भारते वर्षे । स च प्रजा विलुण्ठय, मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमा विभिद्य, पर-

सनाथितवति = सनाथ कृतवति । यैवादिना साकं सनाथीकरणमिति सहोक्तिरलङ्कारः । सौकुमार्यं नामगुणः, अवल्लस्य विस्तरश्च मनमिधानात् । तत्र भवति = भण्डे । “तत्र च भावेने”ति सतमी । पारस्परिकविरोधेन विशिथिलीकृतानि = शिथिलतामापादितानि स्नेहवन्धनानि यैस्तेषु । भामिनीनाम् = मानिनीनाम्, धूमङ्गाः = सकटाक्षेष्णानि, भूरिभावाः = हावावाभेदाः, तेषां प्रभावेण पराभूतानि = विरक्तानि, वैभवानि = धनानि येषां तादृशेषु । गजिनी = “गजनी” इति लोके प्रसिद्धा । मन्कृतशब्दापभ्रंशान्ता एव सर्वे भाषाशब्दा इत्यभिप्रायेण प्रायः साधक-संस्कृतशब्दानामेव नामादिभ्यश्चि प्रयोगः । महामदः = महमूद इति लोके प्रसिद्धं तन्नाम, देशनाम्ना “महमूद उन्नवी” इति दृष्टेः समुच्चित्वम् ।

प्रसन्नता, प्रवास, तेज, बळ, पराक्रम, शान्ति, शोभा, सुख, धर्म और विद्या के साथ वीर विक्रमादित्य के परलोक चले जाने पर, राजाओं के पारस्परिक स्नेहवन्धन के आपसी समझों के कारण ढीले पड़ जाने पर, वीरों के, कामिनीयों के कटाक्षी और हाव-भाव के प्रभाव में आकर सारी मन्थानि दरबाद कर चुकने पर, अमात्यों के स्वार्थचिन्तामात्ररक्षण हो जाने पर, गजाओं के प्रशंसामात्र प्रिय हो जाने पर तथा विद्वानों के ‘अन इन्द्र है, भाव धरुण है, भाव कुबेर है’ कहकर चातुकारिता करके प्रभुओं को प्रसन्न करने में लग जाने पर, गजिनी स्थान निवासी, किसी महामद नाम के यवन ने सेना के साथ भारतवर्ष में प्रवेश किया । वह प्रथ-

प्रथमो निश्वासः

विषये]

दशतान् जगांश्च दासीकृत्य, क्षतग लङ्घेपु रसान्यारोय स्पदेशम-
 नीपीन् । एवं स क्षान्तायादः पौन पुन्येन द्वादशवारमागन्व भारत-
 मलुलुण्ठन् । तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे एतदा गुर्जरदेश-चूडायिनं
 सोमनाथतीर्थमपि धूलीचकार । अथ तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि
 न स्मर्यते; परं तत्समये तु लोकोत्तरं तस्य वैभवमामीन् । तत्र
 हि महार्ह-वैदूर्य-पद्मराग-माणिक्य-मुक्ताफलादि-जटितानि कपा-
 टानि, स्तम्भान्, गृहावमह्नीः, भित्तोः, घलभीः, विटहानि च
 निर्मम्य, रत्ननिचयमादाय, क्षतद्वय-मणसुवर्ग-शृङ्खलाघलम्बिनी
 चक्षुषाचकन्द-चरिनीकृताघलोचक-लोचन-निषयां महापण्टां

अलुलुण्ठन् = लुण्ठितवान् । गुर्जरदेशचूडायिनम् = गुर्जरदेशभूषण-
 स्वम् । धूलीचकार = नाशयामास । जटितानि, 'जट, क्षत सहात' इत्यस्य
 प्रयोगः । "बदे दुवे" इति हिन्दी । गृहावमह्नीः = देहलीः । भित्तोः =
 कुड्यानि । घलभीः = गोपानर्भः । "गोपानसी तु बलभिच्छाटने यत्रदा-
 रणी"त्वमरः । "छज्जा" इति हिन्दी "धरना" इति वा । मणसुवर्गो लोके
 "मन" इति ख्यातः । चक्षुषा = समुच्छलता, चाकषक्येन, चकिनी-
 कृताः = निस्मेरीकृताः, अवलोचकलोचनानाम् = द्रष्टृजननयनानाम्,

को लूट कर, मन्दिरों को ध्वस्त कर, मूर्तियों को तोड़ कर, रीढ़ों लोहों
 को दास बना कर, रीढ़ों ऊँटों पर रख लाद कर, अपने देश को ले गया ।
 इस प्रकार, स्वाद मिल जाने के कारण बार-बार आकर उसने बार-बार
 भारतवर्ष को लूटा । अपने इन्हीं हमलों में उसने एक बार गुजरात के
 तीर्थ का नाम भी किसी को नहीं याद है, पर उस समय उसका वैभव
 लोकोत्तर था । उसमें बहुमूल्य वैदूर्य (नीला), पद्मराग, हरे और मोठा
 बड़े रिकार्डों, स्तम्भों, देहलियों, दावारों, छत्रों और चक्षुषों के दर्जों को
 छानकर, रत्नराशि लेकर, दो सौ मन सोने की बज्जर में लटकने वाली
 और देहीयमान चमकमाहट से दर्जों के नेत्रों को चमकृत कर दे

रामे]

दया मूर्तिमनुष्युटन् । गदापानसमकालमेव चानेकावुदपद्ममुद्रामु-
न्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽघाकीर्यन् । स च दग्ध-
मुखः तानि रत्नानि मूर्तिरण्डानि च क्रमेलकपृष्ठेऽप्यारोप्य मित्पुनद-
मुत्तीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधानीं प्राविशन् ।

अथ कालक्रमेण सन्नामोत्तरसहस्रनमे (१०८७) वैक्रमाब्दे
सशोरं सकष्टञ्च प्राणांत्यक्तवति महामदे, गोरदेशयासी कश्चिन्
शहाबुद्दीन-नामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदुलं धर्म-
राजलोकाध्यन्यध्वनीनं विधाय, सर्वाः प्रजाश्च पशुमारं मार्गयित्वा,
सद्विधिराद्रमृदा गोरदेशे बहून् गृहान् निर्माय चतुरङ्गिण्याऽनीबिन्या

मनुष्युटन् = अभिनत्, भेदितवानित्यर्थः । उच्छलितानि = उत्पतितानि ।
दग्धमुखः = दुष्टः । "मुहुरग" इति हिन्दी । क्रमेलकः = उद्गाः, "दृष्टं
क्रमेलकमयमाप्ता" इत्यमरः । विजयध्वजिनीम् = विजयध्वजस्तम्भम् ।
"न कर्मधारयद्" इति निषेधस्यासार्धप्रिकल्पमुक्तम् ।

गोरदेशः = सिन्धुनद्याः पश्चिमदिशि यवनप्रधानो देशविशेषः ।
शहाबुद्दीनमपि देशनाम्ना "शहाबुद्दीन गोरी" ति कथयन्ति । अध्वनीनम् =
पान्यम् । चतुरङ्गिणीः सेनता चतुरङ्गिणी । "हस्तधरपराशतं सेनाञ्च
स्वाभ्युपयमि" इत्यमरः । अनीबिन्या = सेनया । शीतलशोणि-

महमूद गजनवी ने भीषण गदा से मूर्ति तोड़ डाला । गदा गिरते ही अनेक
अरब पद्म मूल्य के रत्न मूर्ति से उछल कर ऊपर-ऊपर झिरर गये । वह
मुहुरग उन रत्नों और मूर्तिलच्छनों को ऊँटों का पीठ पर लाद कर, सिन्धु
नदी को पार कर अपने विजयध्वजवाली राजधानी गजनवी में प्रविष्ट हुआ ।

तदनन्तर, समय के पेर से वि० सं० १०८७ में महमूद की शीक
अर कञ्चेशपूर्वक मृत्यु हो जाने पर, गोरदेश निवासी शहाबुद्दीन नामक
किमी यवन ने, पहले गजनवी देश पर आक्रमण कर के, महमूद के बराबरी
को यमलोक के पथ का अधिक बना कर, सारी प्रजा को पशुओं की मर्त
मारकर, प्रजा के हरिण से गन्ती मिट्टी से गोर देश में अनेक मरलों का

प्रसन्न संशुभ, महादेवमूर्तावपि गदासुदू तुलन् ।

अथ [वीर ! गृहीतमग्निलं चित्तम्, पराजिता आर्यसेनाः,
चन्द्रीकृता वयम्, सञ्चिन्तममलं यज्ञः; इतोऽपि न शाम्यति ते क्रोध-
श्रेद्गमाभाडय, मारय, छिन्धि, भिन्धि, पानय, मज्जय, खण्डय,
कर्तय, उचलय; किन्तु त्यजे मामकिञ्चित्करो जडो महादेव-प्रतिमाम् !
यद्येव न स्वीकरोषि तद् गुहागाम्मतीऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्,
प्रायस्य, भिना भगवन्मूर्तिस्त्राश्रीः" इति साघेह कथयत्सु रुदत्सु पतत्सु
षिटुण्डत्सु प्रगमत्सु च पूजक्यगोषु; "नार्हं मूर्ताधिक्रीणामि; किन्तु
भिन्नप्रैश्चैत सौम्यं जननाया हाहाकार-कलकलमावर्णयन् पोर-

नियय. = समुद्रो यथा ताम् । रुदन् तुलन् = उदगिडिगत् । प्रहतश-
निनि वायत् । उलूकेकादुन्मानार्थं कथं रादिकात्तुत्थातोः कर्तारि दुष्टि ।
"अकिञ्चित्करी जडामि" इति तदपशोषमादाय तत्प्रीतये वा, न
यन्मृगयेति बोध्यम् । स्वाशी, साहयोगे दुष्ट, अथ एव
ना । स्वाश. स्था इत्येति रूपे । जननायाः = जनममूररप ।

महाशय को चारदीन्नी इमिया कर, महादेव को मूर्ति पर भी गदा उछाड़े ।

उमके शब्द प्रचारियों के "कर" । हमने माया धन से विद्या, दिव्यभी
का सेनाओं को हरा दिया, हम लोगों को कन्दा बना दिया, निर्मल यज्ञ
का मज्जा का दिया, यदि इनने पर भी तुम्हारा क्रोध शास्त्र न हुआ हो
तो इने चलो, मारो, धर डालो, काट डालो, पहाड़ से नीचे गिरा दो, समुद्र
में डुबा दो, दुधक दुधक कर डालो, चर डालो, खण्ड डालो, लेकिन हम
देखते हैं महादेव मूर्ति को छोड़ दो । यदि हम लड़ भी चाहें न हो तो
हमसे हो जायें कालेन्द्राई और ले लो, लो लो, हम महादेवमूर्ति को
मद छुड़ा ।" यह वह वा वा वा दिव्य जाने वा, रोने गिरगिराने,
देते रहने, भूमि पर गिरने और प्रणम करने वा, "मैं मूर्ति देखना नहीं
चिन्तित हूँ" को माया कर, जनना को हाहाकार ध्वनि के बीच उठ

महम्मद मुस्लिम मुमुक्षुः । महम्मदसमकालमेव आनेरानुदयप्रमुद्रामु-
सदा न रक्षानि मुस्लिमपादुपगतिर्गानि वसितोऽप्यकोरं॥१॥ म च दग्ध-
मुसलमानि रक्षानि मुस्लिमरक्षानि च बसोऽवदुष्टेपातं च सिन्धुनद-
मुनीयं स्वर्षीयां विजयवर्जिनी गजिनी नाम राजधानी प्रापिषत् ।

अथ बाह्यभोजन समाप्तीपुनरमात्रकमे (१८८७) ईश्वरदे-
सतोर्ध्वं गच्छन् प्रजापत्यवर्ति महम्मदे, गोरदेशवासी वधिन्
राजापुरीननामा प्रथमं गजिनोदेशमात्रकम्, महम्मदपुलं धर्म-
गजलोकाध्यन्ध्यनीनं विधाय, सर्वो प्रजापत्यपुनरार्थं साग्विद्या,
महम्मदपुलं गोरदेशे पटुन गृहान निर्माय चतुर्गङ्गाजनीविन्या

अमुमुक्षुः = अभिन्नु, भेदितानिन्त्ये । चतुर्गङ्गाजनीनं = उत्पत्तिगानि ।
दग्धमुसलमानि = मुसलमानः । “दग्धमुसलमानि” इति शब्दः । बसोऽवदुष्टे = उदुष्टः, “दग्धे
बसोऽवदुष्टे” इत्यमरः । विजयवर्जिनीन् = विजयवर्जिनीम् ।
“न बसोऽवदुष्टे” इति निर्विवादाभाविबलमुक्तम् ।

गोरदेशः = गिजुल्ल, वधिन्वर्तिष्य पवनपथानो देवविदेकः ।
राजापुरीनमर्धे देवनाम्ना “राजापुरीनमर्धे” इति वचनम् । अध्वनीनम् =
पवनम् । चतुर्गङ्गा = मनेरा चतुर्गङ्गा । “हस्तधरपदात्तं सेनात्तं
हस्तधरपदात्तं” इत्यमरः । अनीविन्या = सेना । राणापुरीनि-

महम्मद गजनरी मे संजय गरा से मुर्ति लोह टाल । गरा मिले ही अनेक
धार पद मूल के रत्न मुर्ति से उछल कर इधर-उधर बिखर गये । वह
मुद्रकण उन रानो और मुर्तिलवहो को उछो को पोट पर लाद कर, सिन्धु
नद को पार कर करने विजयवर्जिनीः राजधानी गजना मे प्रविष्ट हुआ ।

महम्मद, समय के पार से वि० सं० १८८७ में महम्मद की लोक
भर कथेपूर्वक मुमुक्षु हो जाने पर, गोरदेश निवासी राजापुरी नामक
हिमं पवन ने, पहले गजन देश पर आक्रमण कर के, महम्मद के पंथियों
को समर्थक के पथ का पथिक बना कर, साथी प्रजा को पशुओं की पीठ
मारकर, प्रजा के बाहर से गेंली मिट्टी से गोर देश में अनेक महलों का

प्रथमो निधासः

मे]

त भ्रूयते । महाराष्ट्रदेशरत्नम्, यवन-शोणित-विपासाऽऽकुल-
 षणः, वीरता-सीमन्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सान्द्र-सिन्दूर-दान-
 देदीप्यमान-दोर्दण्डः, मुहुटमणिमहाराष्ट्रणाम्, भूषणं भटानाम्,
 निधिनीसीनाम्, कुलभवनं कौशल्यानाम्, पारावार परमोसाहा-
 नाम्, कश्चन प्रातः स्मरणीयः, स्वधर्मोऽऽमद-मद-मदिलः, शिव
 इव धृतायनारः शिववीरश्चास्मिन् पुण्यनगराग्नेदीयस्येव सिद्धुर्गे
 ससेनो निवसति । विजयपुराधीश्वरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्धं वैरम् ।
 “कार्यं वा साधयेवं देहं वा पातयेयम्” इत्यस्य सारगर्भां महती
 “शारत्ताखा” इति प्रसिद्धं नाम । रत्नशब्दस्य नित्यस्त्रीत्वम् । यवनानाम्
 = मोहमयानां, शोणितस्य विपासायामाकुलः कृषाणो यस्य सः ।
 वीरस्य भावो वीरता = वीरता, सैव सीमन्तिनी = लवना, तस्याः
 सीमन्ते = वेष्टनेन, सुन्दरं सान्द्रं = यवन, यस्मिन्दूरदानं = नागवेशर-
 चर्वनं, तेन देदीप्यमानो दोर्दण्डः = बाहुदण्डो यस्य सः । भुवनुग्रामः ।
 स्वधर्मस्य = सनातनधर्मस्य, य आप्रहमद = दृढादि पावनम्, तत्र
 मदिलः = दृढतरः । शिव एवेष्टुर्गता । शिववीरः = “शिववीरः” इति
 विख्यातः । पुण्यनगरान्-“पूना” इति ख्यातात् । नेदीयसि = अति
 वा सनातनधर्मिणी शारत्ता खा दक्षिण देश का शामरु बना कर वहाँ भेजा
 जा रहा है । महाराष्ट्र देश के रत्न, यवनों के दधिर की व्यासी लक्ष्मण
 वाले, वारता रूपी नायिका की मणि में सुन्दर बटकाया सिन्दूर लगाने से
 देदीप्यमान भुजाओं वाले, मराठी के मुहुटमणि, सोडाओं के आभूषण
 नातिवों के निधान, निपुणताओं के कुण्डल, परम उल्लाहों के सागर
 प्रातःस्मरणीय, सनातनधर्म के दृढतम पाषाण, अवतार धारण कर आ
 शिव के समान, महाराज शिराधी पूना नगर से निकट हा तिरगद
 सेनामदित रह रहे हैं । बंजापुर-नरेश के साथ इस समय इन
 घडण रही हुई है । (‘वा हो कार्य को ही पूरा करने का देश
 ही नष्ट कर दारुणा’ पर इनकी सारगर्भित समीर प्रतिभा

प्रतिज्ञा । सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्य आर्यकुलस्य, धर्मस्य, भारतवर्षस्य च आशा-सन्तान-वितानस्यायमेवाऽऽश्रयः । इयमेव वर्तमाना दशा भारतवर्षस्य । किमधिकं विनिवेद्यामो योग-बलाद्यगत-सकल-गोप्यतम-वृत्तान्तेषु योगिराजेषु” इति कथयिष्यामि शिवराम ।

तदाकर्ण्य विविध-भाव-भङ्ग-भासुर-वदनो योगिराजो मुनिराजं तत्सदृशरोध्रं निपुणं निरीक्ष्य, तेषामपि शिववीरान्तरङ्गता-मङ्गीकृत्य, मुनिवेषध्याजेन मधुधर्मगङ्गाध्रतिनध्वोमरीकृत्य, “विजयतां शिववीरः, सिद्धयन्तु भवतां मनोरथाः” इति मन्दं व्याहार्षीत् ।

अथ किमपि पिशुच्छिरामीति शनैरभिधाय बह्वकरसम्पुटे सौक्कण्ठे जटिलमुनी “अयगतम्, यवनयुद्धे विजय एव, देवादापद्-

शयेनान्निक इति नैशयान्, तस्मिन् । आशाया, सन्तानम् = परम्परा, तस्य, वितानम् = विस्तारः, तस्य । योगयत्नेन = योगसामर्थ्येन, अयगत = विजितः, सकलां गोप्यतम = रहस्यामङ्गी वृत्तान्तो यैस्तेषु ।

सन्तानो, सन्तानो, द्विजो, आर्यो, धर्म भार भारतवर्ष की आशाओं के एकमात्र आधार यही है । भारतवर्ष की यही वर्तमान दशा है । आप योगिगुरु हैं और योगबल से सारे गायक वृत्तान्त भी जानते हैं, अतः आपसे अधिक क्या कहना ?” यह कह कर मुनि खुर हो गये ।

यह वृत्तान्त सुनकर, योगिगुरु का मुख विविध भाव भङ्गियों से गिर उठा । उन्होंने मुनि और उनके सावित्री को गौर से देखकर, उन्हें भी “... के अन्तर्गुह सहायक समझ कर, और मुनि के वेष के पहनने धर्म करने की रक्षा करने में बरिष्ठ जानकर, धीरे से ‘यह शिवाजी की आपके मनोरथ पूरे हो’ यह कहा ।

‘मैं कुछ बूढ़ा आदमी हूँ’ धीरे से यह कह कर, जनशायी सक्कण्ठ पूंछ हाथ छोड़ने पर योगिगुरु बोले, ‘मैंने समझ लिया,

ममोऽपि च सगिमाहाय्येनाऽऽत्मानमुद्धरिष्यति" इति सममा-
लीन । मुनिश्च शृणोति मुदीर्य, पुनः विस्मिदिषार्येष, मृत्युवैद्य, च,
दीर्घमुष्णं निश्चय, रोगायमानं गंधं किञ्चिदुद्धरिष्यति भूमागुल-
नयनो "भगवन् ! मायो दुर्लभो गुम्हादध्यानां साक्षात्कार इत्यप-
राऽपि पृच्छाऽऽत्मादयति माम् " इति न्यषेदीन् । स च "आम् !
उनीतम्, लोचनं म, मुनेर्नवाऽऽने" इत्युदीरयत् । अथ "तं
वदा दद्यामीति" पुनः पृच्छति "तद्विवाहसमये दद्यामि" इत्यभि-
धाय, तद्विनि मानवना-यचनां च गम्भीरमपरेणोत्तरा, सपदि
उत्तरायाम्, गण्डनीतान्, अधिन्यसाध्याऽऽत्मा पुनस्तस्मिन्नेव पर्वत-

दीर्घं निश्चयम्, गन्तव्यं कर्तव्यमिति । रोगद्वयमानैः = मर्त्य-
का भावैः । उनीतम् = मृत्युम् । उदीरयत् = उत्तरदायकार । मानव-
नां = मानवजाति । उत्तरायाम् = अत्रेयः सतिदिता भूमिम् ।
गण्डनीतान् = पर्वतान् पर्वतान् स्तूपस्थानान् । "गण्डनीतान् स्तुताः
स्तुतोत्तरा दिरेरि" तमः । अधिन्यसाध्या = अत्रेयः भूमिम् । "उपा-

परम मुद मे शिवाजी की जित ही होगा, दुर्दैव मे आपनिमस्त होकर भी
मित्रों की सहायता से वे अपने को उधार लगे ।' मुनि ने भी 'भगवन् !
ममम् गणा' यह कह कर, पुनः कुछ विचार-मा कर के, कुछ स्मरण-मा
कर के, लम्बी और गम्भीर लम्बे से, गेके जाने पर भी कुछ निरुद्ध आये
अधुनकी से आधुनिक होकर निवेदन किया, 'भगवन् ! आप के समान
महात्माओं का दर्शन दुर्लभ है, अब एक और प्रश्न मुझे उत्पन्न कर रहा
है ।' योगिगुरु के 'हाँ' स्वकार किया, वह जितन है और मुक्तपूर्वक ही
है ।' यह उत्तर देने पर, मुनि ने फिर पूछा 'उसे कब देना होगा ?' 'उसके
मित्रों के समय देना होगा ।' यह कह कर, गम्भीर स्वर से अनेक प्रकार के
आश्वासन देकर, योगिगुरु इसा समस्त पर्वत की घाटी, पर्वत से गिरे हुए
बढ़ा-बढ़ी शिवाजी और पर्वत के ऊपर का भूमि पर चढ़कर पुनः

कन्दरे तपस्तप्तुं जगाम ।

ततः शनैः शनैर्निर्यातिष्वपरिचितजनेषु, संवृत्ते च निर्मक्षिके, मुनिगौरवदुमाहूय, विजयपुराधीनाऽऽज्ञया शिववीरेण सह योद्धुं ससेनं प्रस्थितस्य अपजलखानस्य विषये यावत्किमपि प्रदु-
मियेष, तावत्पादचारव्यनिमित्तं कथाप्यभ्रीषीन् । समवधत्स्यान्-
मनस्के इव मुनी, गौरवदुरपि तेनैव ध्वनिना कर्णयोः कृष्ट इव
समुत्थाय, निपुणं परितो निरीक्ष्य, पथ्येष्ट्य, 'कोऽयम् ?' इति च
साघ्रेष्ठं व्याहृत्य, कमथनवलोक्य, पुनर्निवृत्त्य, 'मन्ये मार्जारः को-
ऽपि' इति मन्दं गुरवे निवेद्य, पुनस्तथैवोपविवेश । मुनिश्च 'मा स्म
कश्चादितरः भ्रीषीन्' इति सशङ्कः क्षणं विरम्य पुनरुपन्यस्तुमारभे—

धिम्या त्यक्तामज्ञाकन्दयोरि" स्तुमयत्रानि त्यक्त् । "उपत्यकाऽङ्गं रासना
भूमिरुर्ध्वमधित्यके" त्यमरः । निर्मक्षिके = मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकं
तस्मिन्, एकान्ते । माननसङ्गारदेशे सर्वत्र मक्षिकास्तिष्ठन्तीति तदभावेन
वनमन्त्राभावात् लक्षणे । मा भ्रीषीन् = मा आकर्णयतु । उपन्यस्तुम् =

गुफा में तपस्या करने चले गये ।

उसके बाद, अपरिचित लोगों के धीरे-धीरे चले जाने और एकान्त
हो जाने पर, मुनि ने ज्यों ही गौरवदु को बुला कर, बीजापुरनरेश की
आज्ञा से वर शिवाजी के साथ लड़ने के लिये सेना के साथ कूच कर
हुके अग्रजल खाँ के तट पर कुछ पूछना चाहा, कि किमी के देवों की
आहूट सुनाई दी । उसे सुन कर मुनि के अन्धमनस्क से हो जाने पर, वह
गोया ब्रह्मचाट, उमा प्वनि से आहूट हुआ मा उठ कर, चारी ओर
मर्जीर्नानि देन कर, टहल कर बार-बार 'कीन है' कर कर, किमी की न
पाकर, फिर सीट हुए से धीरे से 'मादय होता है कीई बिनी है' यह
कर, फिर बैठे ही बैठ गया । मुनि ने भी 'कीई गुफा न सुन ले' इस
से धीड़ी देर रुक कर, फिर करना शुरू किया—



भारतभूषण भारतरत्न भारतधाम्कर, पटिकानाटक, नानावधान,
धर्माचार, महाभारतनाटक मुद्रादि, साहित्याचार्य—
विभिन्न साहित्यकार—

“एतन् गौरसिंह ! भद्रमयन्तं मुप्यामि त्वयि, यत्त्वमेकादो
अपञ्चलग्नानम्य प्रीनधात् तेन दासोक्तान् पञ्च माह्वगतनयाश्च
मोक्षयित्वा आनीतवानसोति । कथं न भवेरीदृशः ? कुलमेवेदृशं
राजपुत्रदेसीयप्रियाणाम्” । तापन् पुनरभ्युपगत मर्मरः पादक्षेपध ।
ततो पिरम्य, मुनिः स्वयमुत्थाय, प्रोच्य शिलापोठमैरमागच्छ,
निपुनतया परितः पश्यन्नपि कारणं किमपि नावलोकयामास
चरणक्षेपशब्दाय । अतः पुनरेवतानेन निपुणं निरीक्षमाणेन गौर-
सिंहेन दृष्टं, यत् कुटीर-निरुटम्भ-निष्पुटक-कदलोक्नुटे द्विगभतर-
षोडशितरां कम्बन्ते इति । तदेव सशयस्थानमित्यङ्गुल्या निर्दिश्य,
कुटीर-बलीके गोपयित्वा मधापिनानामसीनामेकमाकृष्य, त्रि-
क-

रुपयितुम् । राजपुत्रदेसः = राजपुत्रस्यन्दापर्यधीनतो लोके सम्प्रति
“राजपूताना” इति प्रसिद्धस्यन्दपरदेशो देशः । मर्मरः = उपकरण-
ध्वनिः । “अथ मर्मरः । स्वनिते मर्मरपर्वनामि” इत्यमरः । एकतानेन =
एकचित्तेन । निष्पुट एव निष्पुटकाः = पद्यायमाः, “पद्यायमानु
निष्पुट” इत्यमरः, कुटर्धनकटे तिष्ठन्तीति कुटीरनिरुटस्याध ते पद्यायमास्तेषु,
कदलोनाम् = रम्भाणाम्, कूटे = समूहे । बलीके = परले । “बलीकनभे

“बेटा गौरसिंह ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम अकेले ही
अपञ्चल सर्ग के तीन थोकों और उसके द्वारा दास बनाये गये पाँच
माह्वगलकों को छुड़ा कर ले आये । तुम ऐसे क्यों न होगे, राजपूताने
के क्षत्रियों का कुल ही ऐसा है ।” इसी बीच मर्मर ध्वनि और पैरों की
आहट पुनः सुनाई दी । तब बोलना बन्द कर, मुनि ने स्वयं उठकर एक
ऊँची चिला पर चढ़कर, चारों ओर भलीभाँति देखा, पर पैरों की आहट
का कोई कारण नहीं दिखाई दिया । इसलिये, एकपिचित होकर पुनः भला-
भाँति देखते हुए गौरसिंह ने देखा कि कुटी के निरुट की पद्यायिका
बली के छरमुट में दो-तीन वेद बहुत अधिक दिख रहे हैं । ‘सन्देह

कन्दरे तपस्तप्तुं जगाम ।

ततः शनैः शनैर्निर्वातिष्वपरिचितजनेषु, संवृत्ते च निर्मक्षिके, मुनिर्गौरवदुमाहूय, विजयपुराधीशाऽऽज्ञया शिववोरेण सह योद्धुं ससेनं प्रस्थितस्य अपञ्जलखानस्य विषये यावत्किमपि प्रष्टुं भियेष, तावत्पादचारध्वनिमिव कस्याप्यश्रोषीन् । तमवधारयान् मनस्के इव मुनी, गौरवदुरपि तेनैव ध्वनिना कर्णयोः कृष्ट इव समुत्थाय, निपुणं परितो निरीक्ष्य, पथ्यष्टव, 'कोऽयम् ?' इति च साध्वेहं व्याहृत्य, कम्प्यनवलोक्य, पुनर्निवृत्त्य, 'मन्ये माज्जोरः कोऽपि' इति मन्दं गुरवं निवेश्य, पुनस्तर्धवापयिष्येति । मुनिश्च 'मा एव कश्चिदितरः श्रोषीन्' इति सशङ्कः क्षणं विरम्य पुनरुपन्यस्तुमारंभे—

धिम्या त्वकृत्तासप्ताकृद्योरि" त्पुमवशापि त्यक्त्वा । "उपत्यक्ताऽद्रेयसप्ता भूमिरुर्ध्वमपित्यके" त्वमरः । निर्मक्षिके = मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकं तस्मिन्, एकान्ते । शान्तपथश्चारेदेशे सर्वत्र मक्षिकास्तिष्ठन्तीति तदभावेन शान्त-संचाराभावो लक्ष्यते । मा श्रोषीन् = मा आकर्णयतु । उपन्यस्तुम् =

गुना में तपस्या करने चले गये ।

उसके बाद, अपरिचित लोगों के धारे-धारे चले जाने और एकान्त हो जाने पर, मुनि ने ज्यों ही गौरवदु को बुला कर, बीजापुरनरेश की आज्ञा से वर शिवाबा के साथ लड़ने के लिये सेना के साथ कुच कर चुके अकबल सौ के विषय में कुछ पूटना चाहा, कि किसी के पैरों को आहत नुनाई हो । उन्हें चुन कर मुनि के अन्वयनस्क से हो जाने पर, वह शीघ्र ब्रह्मचार, उठा ध्वनि से आहूत हुआ गा उठ कर, पागों और नकलानि देन कर, दहक कर बार-बार 'कीन हो' कर कर, किना को न चकर, फिर लोट मुँह से धीरे से 'मादम होना हो कोई बिली हो' यह कर कर, फिर बैठे ही बैठ गया । मुनि ने भी 'कोई दूसरा न मुन में' इस आहूत से जोड़ा देर तक कर, फिर बहना टुक किया—

(“कम गौरमिह ! अहम-यन्त्रं गुप्यामि त्वयि, यत्त्वमेकाको
अपञ्चनगरानस्य ग्रीनधानं तेन दासोऽज्ञानं पञ्च माद्वगतनयांश्च
मोषादिषा आनीनवानमोति । कथं न भवेरीदृशः ? कुलमेवेदृशं
राजपुत्रदेशीयप्रशिक्षणाम्” । तावन् पुनरश्रयं मर्मरः पादोपध ।
तमो विगम्य, मुनिः स्वयमुत्थाय, मोक्षं शिलापीठमेकमागच्छ,
निपुनतया पश्चिः पश्यन्तपि कारणं किमपि नापलोकयामास
स्वयमोपजन्तम्य । अतः पुनरेरतानेन निपुणं निरीक्षमाणेन गौर-
मिहेन दृष्टं, यन् कुटीर-निकटम्य-निष्कृतक-कदलोऽकूटे द्विगामर-
घोर्ज्ञानतया सम्पन्ने इति । तदेव संशयाधानमित्यङ्गुल्या निर्दिश्य,
कुटीर-बलीके गोपयित्वा स्थापितानामसीनामेकमाकृष्य, स्थि-

कथयितुम् । राजपुत्रदेश = राजपुत्रपन्थापद्धतीन्तो श्रीके सम्प्रति
“गजदूताना” इति प्रतिशब्दव्यवहारो देशः । मर्मरः = दुष्करण-
ध्वनिः । “अथ मर्मरः । स्वनिवे वध्वरश्वनामि” इत्यमरः । एकज्ञानेन =
एकचित्तन । निष्कृत एव निष्कृतकाः = यथायमान, “यथायमानु
निष्कृत” इत्यमरः, कुटीरनिषटे निवन्तीति कुटीरनिषट्स्थानं ते यथायमानुतेषु,
कदलोनाम् = सम्भाषणम्, कूटे = समूहे । बलीके = पटले । “वर्जकनामे

“देव गौरमिह ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम अकेले ही
अपञ्चनगरों के तीन घोड़ों और उसके द्वारा दास बनाये गये पच
माद्वगन बालकों को छुड़ा कर ले आये । तुम ऐसे क्यों न होगे, गजदूताने
के धविषों का कुल ही ऐसा है ।” इसी बीच मर्मर ध्वनि और पैरों की
आहट पुनः सुनाई दी । तब झेलना बन्द कर, मुनि ने स्वयं उठकर एक
ऊँचा शिला पर चढ़कर, जागे और भलीभाँति देखा, पर पैरों की आहट
का कोई कारण नहीं दिखाई दिया । इसलिये, एकाग्रचित्त होकर पुनः भला-
भाँति देखने हुए गौरमिह ने देखा कि कुटीर के निम्न की सरासिका के
बेलों के छुत्तुड में दो-तीन पेड़ बहुत अधिक दृढ़ रहे हैं । ‘सन्देह

हस्तेनैव मुनिना प्रयतोऽनुगम्यमानः कपोल-तल-विलम्बमानत
चक्षुभ्रम्यन् कुटिल-कनान् वामकराङ्गुलिभिरपसाग्यन्, कुंते
वेपोऽपि किञ्चित्कोप-कपायित-नयनः, कर-कम्पित-कृपा-कृ
कृपाणां महादेवमारिगर्धयिषुभनपम्बिवेपोऽर्जुन इव ग्रान्तवोरस्त
द्वयम्नानः सपदि समागतवान् तत्रिकटे, अपरयष्ट लता-प्रवृत्ति
विनान-वेष्टित-रम्भा-स्मम्भ-त्रितयस्य मध्ये नीलवस्त्र-युग

पट्टप्रान्त” इत्यमरः । “छप्पर की ओर” इति हिन्दी ।

रिचक्ष्मेत = क्षुब्धरेण । कपोलतल-विलम्बमानान् = जल-
मेलमान् । किञ्चित्कोपेन = ईषत्कोपेन, कपायिते कटुपिठे, नयने = नेत्रे
यन् सः । करे कम्पितः कृपाकृपाणः = दयाशून्यः, कृपाणः = अतिरिक्त
म् । आरिगर्धयिषुः = तेष्विषुभिश्चुः । शङ्करसमारोचनाय का कथितचारे
मन्मथभाण्डवस्त्रभूषारेति महाभारतयोः कथा क्रियात्तर्जुनीरमहाकाव्यनू
न्ता । पूर्णावमा । लतानाम् = वल्लीनान्, “वल्ली तु व्रतति लते” इत्यम
प्रनानानि = क्षुब्धतन्तवस्तेषां, विनानम् = विस्तारः, तेन वेष्टितम् = वस्त्र
निम्, रम्भास्मम्भानां त्रितयम् = कदम्ब, स्तम्भनयं, तस्य । वचनयुक्तम्
परदित्वन्वयः । तमेव विधिनष्टि । नील्या रक्तं नीलं, तच्च वस्त्रमण्डम्

म्यान रहा है’ ऐसा उँगलों के दृष्टारे से बताकर, छप्पर की ओर से
ठिगकर गली गयीं लकड़ारों में से एक लकड़ार खींच कर गौरगिह उसी
आंग चढ़ दिया । मुनि गाला हाथ हो उसके पीछे हो लिये । गालों पर
लटकते हुए अंग आँखों पर आ जाने वाले अपने बुँधगति बालों को
सेना करने हुए, मुनिवेश में होते हुए भी कुछ कोप से लाल नेत्र किये हुए,
हाथ में निदेश तडगाग लिये हुए, महादेव की आराधना करने के लिए
तन्त्र वेदगाग अर्जुन के समान ग्रान्त और बोर दोनों रसों से सपसीर
गौरगिह, सट उमके समीप आ पहुँचा और वहाँ आकर उसने
लताओं का विस्तृत वेग से वेष्टित केले के तान पेड़ों के बीच, नीले कपड़े

[illegible]

हस्तेनेव मुनिना वृद्धतोऽनुगम्यमानः कपोल-तल-
चक्षुश्चम्बिनः कुटिल-कृचान् वामकराङ्गुलिभिरपसारयन्, कुं
वैपोऽपि किञ्चित्कोप-कपायित-नयनः, कर-कम्पित-कृपा-कृर
कृपाणो महादेवमारिराधयिषुस्तपस्विवैपोऽर्जुन इव शान्तवीररक्त
द्वयस्नातः सपदि समागतवान् तन्निकटे, अपश्यच्च लता-प्रतान
विनानि-वेष्टित-रम्भा-स्तम्भ-त्रितयस्य मध्ये नीलवस्त्र-खण्डं

पटलप्रान्त” इत्यमरः । “छप्पर की ओरी” इति हिन्दी ।

रिक्तहस्तेन = शून्यकरेण । कपोलतल-विलम्बमानान् = गन्ध
संलभान् । किञ्चित्कोपेन = ईर्ष्याकोपेन, कपायिते कटुयिते, नयने = नेत्रे
यस्य सः । करे कम्पितः कृपाकृपणः = दयाशून्यः, कृपाणः = अनिर्दय
सः । आरिराधयिषुः = सेवितुमिच्छुः । शङ्करसमाधयनात् करकलितत्वात्
मध्यमराण्डवस्तपश्चारेति महाभारतीया कथा किरातार्जुनीयमहाकाव्यनृ
भूता । पूर्णोपमा । लतानाम् = वल्लीनाम्, “वल्ली तु व्रततिलते” इत्यमरः
प्रनानानि = सूक्ष्मतन्तवस्तेषां, विनानम् = विस्तारः, तेन वेष्टितम् = वस्त्र
वितम्, रम्भास्तम्भानां त्रितयम् = कदलीस्तम्भत्रयं, तस्य । यवनयुक्तम्
पदवदित्यन्वयः । तमेव विधिनष्टि । नील्या रक्त नीलं, तथ वस्त्रखण्डम्

‘थान वहा है’ ऐसा उँगलों के इशारे से बताकर, छप्पर की ओरी में
छिपाकर रखी गयी तलवारों में से एक तलवार खींच कर गौरसिंह उस
ओर चढ़ दिया । मुनि खाली हाथ ही उसके पीछे हो लिये । गालों पर
झटके हुए और अस्त्रों पर आ जाने वाले अपने बुँधराले बालों को
सँभालते हुए, मुनिवेश में होने हुए भी कुछ क्रोध से लाल नेत्र किये हुए,
हाथ में निर्दय तलवार लिये हुए, महादेव की आराधना करने के लिए
हरम्यो वैपरासी अर्जुन के समान शान्त और वीर दोनों रसों से सपथी
गौरसिंह, झट उसके समीप आ पहुँचा और वहाँ आकर उसने
लताओं की बिछुरा बेसी से वेष्टित केलों के तीन पेड़ों के बीच, नीले कपड़े

त्वं दीर्घ-दाघ-दहने पतद्वायितोऽसि ।

यवनयुवकः—अरे रे बाघाल ! तू रात्री गुप्ता-कुटीरे रहती समायातां ब्राह्मण-तनयां सपदि मयच्छत, तत्कदाचिद् दयया जीवतांऽपि त्यजेयम्, अन्यथा मदसिभुजग्नित्वा दष्टाः क्षणान् कथावशेषाः सञ्चत्स्येध ।

कलकलमेतमाकुर्यं श्यामवदुरपि कन्यासमोपादुत्थाय दृष्ट्वा च हन्तुमेतं यवनवराकं पर्याप्तोऽयं गौरसिंह इति मारुत गमदन्त्योऽपि कश्चित् कन्यकामपांजहीपुंसिनि पलीकादेकं विकटराक्षमाकुर्यत्सरी गृहीत्वा कन्यकां रक्षन्, तदभ्युपनि-कुटीर-निवृट् एव तावती ।

बाधनाति, देशं ते । दीर्घश्वासो दाघदहनः = वनाभितरिणम् । “दवशाको वनानल” इत्यमरः । जीवनं, यतो रुग्णमिदम्—कुम्भानित्यप्याद्विषमाण-विरोधस्य विरोधम् । मदसिरेव भुजग्नितो = सर्पिणी, तथा । रुक्कम् । संचत्स्येध, “इन्द्रपः स्पृष्टनोरि” ति परमैरदम्, “न वृक्षपश्चतुर्ध्वं” इति विधेयः ।

कलकलम् = कोलाहलम् । पलीकान् = पल्लवान्तात्, तथा = कन्य-
कया, आचुरितस्य = सेवितस्य, कुटीरस्य निवृट् तस्यो = स्थितः ।
तदह जलने आ गये हो ।

यवन युवक—अरे बकपाटो ! कल रात जो ब्राह्मण की लड़की रोती-रोती गुप्तारी कुटी में आई थी, उसे मुरन्त मेरे हवाले कर दो तो शायद दया करके तुम्हें खता छोड़ दूँ, नहीं तो क्षण भर में ही मेरी इस नागिन सा ललवार से ईंसे गये गुप्तारी शिकं कराना ही बाक्य बचेगी ।

यह कोलाहल सुनकर, सचला ब्रह्मचारी भी, बाबिका के पास से उठ कर, यवन युवक और गौरसिंह को देखकर यवन युवक का काम खान कर सक्ने के बिना अकेले गौरसिंह को ही काफी लज्जाकर, ‘बाबिका का अपहरण करने कोई दूसरा यवन भी न आ पावे’ यह सोचकर छत्तर का ओरी से एक भयकर तलवार खींचकर उसको मूठ पकड़कर, बाबिका का रक्षा करता हुआ, जिस कुटी में बाबिका थी उसके समीप ही खड़ा हो गया ।

युवकम् । ततः परस्परं चाक्षुषे सम्पन्ने दृष्टोऽहमिति निश्चित्य,
उत्प्लुत्य, कोशात् कृपाणमाकृष्य, युयुत्सुः सोऽपि सम्मुखमवतस्थे ।
ततस्तयोरेवं संजाताः परस्परमालापाः ।

गौरसिंहः—कुतो रे यवन-कुल-कलङ्क !

यवन-युवकः—आः ! वयमापि कुत इति प्रष्टव्याः ? भारतीय
कन्दरिकन्दरेष्वपि वचं विचरामः, शृङ्ग-लाङ्गूल-विहीनानां हिन्दु
पद-व्यवहार्याणाञ्च युष्मादृक्षाणां पशूनामाखेटक्रीडया रमामहे ।

गौरसिंहः—[सक्तोऽपि विदस्य] वयमापि तु स्वाङ्गागतसत्त्व
वृत्तयः शिष्यस्य गणा अत्रैव निवसामः, तत्सुप्रभातमद्य, स्वयमेव

वयत्कम् । चाक्षुषे = चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षे । उत्प्लुत्य = उत्पत्य । “कूद-
कर” इति हिन्दी । युयुत्सुः = योद्धुमिच्छुः । अवतस्थे = स्थितः, “सम-
प्रविश्यः स्थ” इत्यात्मनेपदम् । भारतीयाः = भारतभवाः, ये कन्दरिणः =
शैलास्तेषां कन्दरेषु = गुहासु । आखेटक्रीडया = मृगयाखेलया ।

स्वाङ्गे आगताः सत्त्वाः = प्राणिन एव वृत्तयः = जीवन-

से कलङ्कित मुखवाले, लगभग बीस वर्ष की उम्र के एक मुसलमान
युवक को देखा । तदनन्तर सामना हो जाने पर, ‘मैं देल लिया गया
हूँ’ यह समझकर, हुरमुट से कूदकर, म्यान से तलवार खींचकर, वह
मुसलमान युवक भी लड़ने के लिए सामने खड़ा हो गया । तदनन्तर
उन दोनों का आपस में इस प्रकार बातचीत हुई—

गौरसिंह—क्यों रे यवन कुलकलङ्क ! यहाँ कहीं से आया !

यवनयुवक—अरे ! हमसे भी ‘कहाँ से’ पूछता है ! हम भारतवर्ष
की पर्वतश्रृङ्गाओं में भी विचरण करते हैं और हिन्दू नामधारी तुम जैसे
सींग-पूछ विहीन पशुओं का शिकार कर आनन्द मनाते हैं ।

गौरसिंह—(क्रोधपूर्वक हैस कर) पास में आये हुए दुष्ट जीवों पर हो
‘वित रूने वाले शिव के गज रूप हम लोग भी तो यही रहते हैं, तो
आज का सुबह बहुत शुभ है, तुम स्वयं ही पधकती दावाग्नि में पतंग की ।

त्वं दीर्घ-दाय-दहने पतङ्गायितोऽसि ।

यवनयुवकः—अरे रे पाचाल ! छो राखी मुष्मकुटीरे रुदती समायातां प्राप्ताय-तनयां सपरि प्रयच्छत, तत्कदाचिद् दयया जीयतोऽपि त्यजेयम्, अन्यथा मदसिभुर्जङ्गिन्या दष्टाः क्षणान् कथावशीपाः सवत्स्यथ ।

कलकलमेतमाकृष्य श्यामबहुरपि कन्यासमोपादुत्याय दृष्ट्वा च हन्तुमेतं यवनवराकं पर्याप्तोऽयं गौरसिंह इति मास्म गमदन्त्योऽपि कश्चिन् वन्यकामपञ्जिहीर्षुरिति यलोकारेकं विकटसङ्गमाकृष्य तस्यै गृहीत्वा कन्यकां गच्छन्, तदभ्युषित कुटीर-निकट एव तस्थी ।

साधनानि, देशं ते । दंर्वभासी दायदहनः = वनामिस्त्रिभिन् । “दवरासो वनानल” इत्यमरः । जीवतः, यतो रूपमिदम्-कुप्यामित्यप्याद्विवरण-विशेषस्य विशेषणम् । मदमिरेव भुर्जङ्गिनी = सर्पिणी, तथा । रूपकम् । संघतर्क्यथ, “वृक्षयः स्पसनीर” वि परमैरदम्, “न इन्द्रपथमुर्ध्व” इति निषेधः ।

कलकलम् = कोलाहलम् । यलीकान् = परलमान्जाल्, तथा = कन्य-कया, अभ्युषितस्य = संवितस्य, कुटीरस्य निकटे तस्थी = स्थितः । तदहं बहने आ गये हो ।

यवन युवक—अरे बहवादो ! कम राज जो लक्षण की लक्ष्मी रोती-रोती तुम्हारी कुटी में आई थी, उसे तुम्हारे मेरे हवाले कर दो तो चापद दवा करके तुम्हें बचा छोड़ दूँ, नहीं तो खूब भर में हाँ मेरी इस नागिन सा लकड़ार से कैसे गये तुम्हारी तिरफें करना हाँ बाकी बचेगी ।

यह कोलाहल सुनकर, सबका बहलपारी भी, बालिष्ठा के पास से उठ कर, यवन युवक और गौरसिंह को देखकर यवन युवक का भाव समान कर सबने के लिए अकेले गौरसिंह को हाँ बाकी लकड़ार, ‘बालिष्ठा को अवरण करने कोई दूसरा यवन भी न आ जाय’ यह सोचकर ऊपर का ओरी से एक भंवकर लकड़ार लौटकर उसकी मुँठ पकड़कर, बाँडवा

यवन युवक को लकड़ार की कुटी में बालिष्ठा की उसके समीप ही खड़ा हो

गौरसिंहनु “कुटीरान्तः कन्यकाऽस्ति, सा च यवन-वध
व्यसनिनि मयि जीवति न शक्या द्रष्टुमपि, किं नाम म्पदुम्!
तद् यावत्तव कवोष्ण-शोणित-तृपित एव चन्द्रहासो न चर्तते,
तावत् कूर्दनं वा, उत्फालं वा यच्चिकीर्षसि तद्विधेहि” इत्युक्त्वा
व्यालीढमप्यादया सज्जः समतिष्ठत ।

ततो गौरसिंहः दक्षिणान् वामांश्च परश्चानान् कृपाणमागान्
जोक्तवतः, दिनकर-कर-स्पर्श-चतुर्गुणीकृत-चाकचक्यैः चञ्चवन्त्र-
हासचमत्कारैश्चक्षुःपि मुष्णतः, यवन-युवक-हनकस्य, केनाप्यनुप-

यवनानां वध एव व्यसनं वस्य तादृशे । कवोष्णस्य = इषदुष्णस्य,
“कोष्णं कवोष्णे मन्त्रोष्णे कदुष्णे त्रिषु तद्वती” त्यमरः, शोणितम्य = छोड़ि-
तस्य, तृपितः = पिपासितः । चन्द्रहासः = सङ्गः “त्वङ्गेतु निम्बिश्चन्द्रहास-
सिरिश्च” इत्यमरः । कूर्दनं वा उत्फालं वा = “कूटना, उछलना” इति
हिन्दी । व्यालीढम् = युद्धावस्थानविशेषः, तन्मयादया । कोदण्डमण्डना-
दिषु प्रसिद्धमिदम् । “पैतरा” इति हिन्दी ।

दिनकरकराणाम् = सूर्यकिरणनाम्, स्पर्शेन चतुर्गुणीकृतम् =
वर्धितम्, चाकचक्यम् = प्रतिभासविशेषो पैलीः । चञ्चवन्त्रहासचम-
त्कारैः = सञ्चरत्सङ्गचमत्कारैः । मुष्णतः = चोरयतः । हतकस्य =
दुष्टस्य । केनापीत्यनुपलक्षितविशेषणम् । “सविशेषणानां वृत्तिर्न” इति तु न

गौरसिंह, “बालिका कुटी के भीतर है, यवनों के वध के व्यसनी मेरे
साथे आं तू उसे छूना तो दूर, देख भी नहीं सकता । जब तक तेरे खून
की प्यासी यह तलवार नहीं चरती तब तक धाढ़े जो उछल-कूद मचा
ले ।” यह कहकर पैतरा बना कर, तैयार हो गया ।

तब गौरसिंह ने, तलवार के, दावें बायें छेकड़ों पैतरे बदलने वाले,
गुर्ज की छिरणी के समझ से बिमल चमक चौगुनी हो रही थी, ऐसी
तब तो दुर्दै तलवार की चमकमाहट से आँखों को चौधिया रहे उस दुष्ट

साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास

जयपुर में लगभग ११ बोल पूर्व 'रावन जी की घूला' नामक चारो पहाड़ियों में विराट् नाम कीर-प्रमद्विनी भूमि राज्यस्थान के बमल-कोमल में वन्य जी भाति संभित है। मानसिंह के द्वितीय पुत्र दुर्जन सिंह ने अपनी राजधानी बनाया था। दुर्जन सिंह के वध में टाकुर ने सिंह हुए, उनके दार-पण्डित आदि गोह, पराशरगोत्रीय, यजुर्वेदी, अथर्व, भीष्म वजावन भी गोविन्दराय जी हुए। पं० गोविन्दराय के लिये पं० राजाराम जी लोचनवावा करने हुए बाली आवे और काशी-वर्मियों के आग्रह के कारण मानसिंह मुहम्मद में बन गये। पं० राजा-राय जी ज्योतिष और पण्डितों के अतिरिक्त लेन-देन का व्यवहार भी करने थे, किन्तु व्यवहार-मुचल न होने के कारण महाकनी का व्यवहार उनके लिये मंजूर था।

भाद्रपद शुक्ल १ सं० १८७२ वि० की बुधवार के दिन पं० राजाराम के ज्येष्ठ पुत्र पं० दुर्गादत्त का जन्म हुआ। पं० दुर्गादत्त बहुमुखी प्रतिभा के धारक थे और मरुत तथा हिन्दी के निदहस्त लेखक तथा कवि थे। जयपुर के मिलावटी के मुहम्मद में आपको समुचल थी। वही चंद्र शुक्ल १ सं० १९१५ वि० की आठके द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ। तबराज के अष्टमी के दिन जन्म लेने के कारण पुत्र का नाम अम्बिकादत्त रखा गया। किसी ने टीका ही कहा है 'होलहोल-विजयान के होत भीकने पाल'। सात वर्ष की अवस्था में ही व्यास जी भारतेन्दु जी द्वारा आयोजित ब्रि-मार्गिका में समस्या-निर्णय करने लगे थे।

सं० १९२८ में १३ वर्ष की आयु में आपका विवाह हुआ।

प्रथमो निधासः

अथ मुनिरपि दाहिम-वुमुमानरणाच्छायायामिव गाढ-रधिरे-
 त्तोषोगः, अयमादेव स्वासिता कलिन-कलेद-संज्ञान-भेद-
 जालं विनिधिल कच-शुल्भ-मालं मम-भू-भयानक-मालं
 रश्चिच्छेद ।

अथ मुनिरपि दाहिम-वुमुमानरणाच्छायायामिव गाढ-रधिरे-
 त्तोषोगः ज्वलदङ्गार-चिताया चितायामिव वमुधायां शयानं विमु-
 त्तोषोगः इति मुख्यमेव । स्वामिना शिरश्चिच्छेदेत्यन्वयः । शिरो
 मेदिनी—कलिनेन = व्यालेन, कलेदनेन = भोगेन, मञ्जानम्य = उत्त-
 मस्य, स्वेदजलम्य = धर्मजलस्य, “वमो निदापः स्वेद” इत्यमरः,
 जालम् = मनुष्यो यन्मिस्तत् । विनिधिलः = इतस्ततः परिश्रमः, पचा-
 नाम = पेशानाम्, कुलम्य = मनुष्य, माला = पङ्क्तिः, यन्मिस्तत् ।
 भयनया = शिरसा, भुवा = हृत्पर्वभागेन, “ऊर्ध्वं हृत्पर्वं भुवी विगवि”
 इत्यमरः, भयानरम् = मीरणम्, मालम् = ललाटम्, यन्मिस्तत् ।
 मालम् मालम् मालमित्यत्र यमकम् ।

वमुधायाम् = पृथिव्याम् । शयानम् = पतितम् । वमुधा विनिधिल-
 गादेन = घन-भूतेन, रधिरेण = लोहितेन, दिग्धायाम् = चितायाम् ।
 “दिग्धो विरात्तगणे हस्त्युमि निसेन्दुद्विहक” इति मेदिनी । उत्प्रेक्षते-
 दाहिमम्य = पराकाश, “दाहिमस्तु विलिप्तः स्वादेलापां परके विधि” वि-
 मेदिनी, वुमुमानाम्, आभरणेन = विहरेण, आच्छायायामिव ।
 पुनर्युपेक्षते ज्वलदङ्गारं, चितायाम् = व्यासायाम् । चितायाम् =
 चिनी, “चिता चित्वा चितिः विगवि” इत्यमरः । मर्ममयवनाय न
 पावनैश्चिता प्राप्यते । हिन्दुवरेण वुमुमयाय विगतः पातय इति सा

यवन के भय करने से निकले हुए पर्वते से तर, अस्तव्यस्त वाली बाले
 देवा भीरी से भयानक लगने वाले ललाट वाले शिर को देखी साराई
 काट डाला कि कोई देख भी न पाया ।
 तत्पश्चात् मुनि ने भी, भयान के पुनो के गिलीने से टही हु
 गादे मूल से लपराय हो रही, बल्ले भीमारी से दस्त चित्र के

ज्यमान-भारतभुवमालिङ्गन्तमिव निर्जीवीभवद्भ्रवन्ध-चालने
परं शोणित-सङ्खान-व्याजेनान्तःस्थित-रजोराशिमिवोद्विग्नं कलित
सायन्तन-घनाऽऽडम्बर-विभ्रमं सतत-ताम्रचूड-भक्षण-पातङ्गं
ताम्रीकृतं छिन्न-कन्धरं यवनहतकमवलोक्य सङ्घं ससाधुवादं सरो
मोदमञ्च गौरसिंहमाश्लिष्य, भ्रूमङ्गमावाऽऽश्रुतेन मृत्वेन मृता

लब्धाऽनेनेति ध्वनिः । चिन्ताचितयोर्दृढकत्वपदांलोचनापरमि
पद्यमनुभक्षपथयिकम्—“चिन्ताचिताद्वयोर्मध्ये बिन्दुमात्रं विर्योपकम्
सजीवं ददते चिन्ता निर्जीवं ददते चिन्ता ॥” यवनहतकं विशिनष्टि-निर्जीवी
भवताम्=निष्पाणतां गच्छताम्, अङ्गवन्धानाम्=शरीरसन्धानान्,
चालने, परम्=निरतम् । शोणितसंघातव्याजेन=रुधिरवाह
लेन । अन्तःस्थितो यो रजोराशि=रजोगुणसमूहः, तमिवेत्युपमेयाः ।
उद्विग्नम्=व्यमन्तम् । कलितः=धारितः, सायन्तनस्य=मायमवस्थे,
घनाडम्बरस्य=मेघविडम्बनायाः, विभ्रमः=मिलासो येन तम् । सत-
तम्=सर्वदा, यत् ताम्रचूडस्य=कुक्कुटस्य, “कुक्कुटाकुलाग्रचूडः कुक्कुट-
धरणाद्युव” इत्यमरः, भक्षणम्=अशनम्, तदेव पानकम्=पापं तेनैव,
ताम्रीकृतम्=रक्तकृतम् । छिन्नकन्धरम्=कृतमांशम् । सायङ्कालिक

पूर्वा पर छक्क रहे, बिन्दुइती दुई. भारत भूमि का आलिङ्गन करते हुए
से, निर्धाव हो रही अंगर्यापियों को दिलाते और छत्रपते हुए, रुधिर राशि
के बहाने भीतर के रजोगुण को उगलते हुए से, सायंकालीन मेघ के
समान, मानों निरन्तर मुर्गा खाने के पाप से साज हो गये, कटे हुए सिर
वाले, कुछ यवन को देख कर, हाँपूँवक, घापाघो देते हुए, रोमाञ्चित
होकर, गौरसिंह का आलिङ्गन कर के, आँखों के इशारे पाप से आहत

कञ्जुक-कटियन्धोष्णोपादिकमन्विष्याऽऽनीनं पत्रमेकमादाय सगगः
स्वकुटोरं प्रविशेत् ।

इति प्रथमो निश्वासः ।



सर्वं एव सजातमिति यावत् । कटियन्ध.=करनभटिका “पेदी” इति हिन्दी ।
लष्णीपम् = शिरोवेदनम् ।

निश्वास इति वाक्यविन्यासरूपे गद्यकान्ये निश्वासप्रश्ना एव परि-
च्छेदका भवन्तीति परिच्छेदकानामङ्गसर्गाध्यायादिसंज्ञाः समुपेक्ष्य निश्वास-
संज्ञामेवास्माद्वक्तारः ग्रन्थकारः । यद्यपि वाणादिभिर्दृष्ट्यासंज्ञा गृहीता,
किन्तु सा शोककोपादायैवापेक्षितेति तामपि हत्यात्वा । भवति चान्न प्राचीनं
पद्यम्—“श्रीद्विप्रकपेण पुराणीति-म्यतिशयः श्लाघनमः कवीनाम्” इति
ग्रन्थकृन्तिभ्यस्तु विष्णो ।

इति शिवरात्रिविजयवैजयन्त्यां प्रथमनिश्वासविवरणम् ।



मूल्य द्वारा, मूलक के बोले, कमरबन्द और पगड़ी को हल्लाओं लेकर लाये
गये एक पत्र को लेकर, सब के साथ अरनं कुटी में प्रवेश किया ।

शिवरात्रिविजय के प्रथम निश्वास का हिन्दी अनुवाद समाप्त ।

ज्यमान-भारतमुदमादिहूनमिव निर्जोषी नगरहृत्पत्र-पत्र
 परं शोणित-महान व्याजेनान्न-मिव-मजो-मजिमिषोदित्त्वं कृत्
 सायन्नन-यनाऽऽहम्बर-विभ्रमं मय-नामगूर-भक्षण-पातके
 ताघ्रीकृतं छिन्न-कन्धरं यवन-कमयशोभय मयं समापुष्यं स
 मोद्रमय गौरसिद्धमाश्रित्य, धूम्रमात्राऽऽहमेन मुन्येन मृद
 ल्पशब्देनेति ध्वनिः । चिन्ताचितपःशोदकत्वमन्त्रेयनरलि
 पयमनुभवययधिष्णु-“चिन्ताचिताइयोर्नये चिन्दुमार्थं चितोम
 सबीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिन्ता ॥” यवनइतकं विठिनटि-निर्जोषी
 भयनाम् = निष्पाणता गच्छताम्, अङ्गवन्धानाम् = शरीरमन्धनान्
 चालने, परम् = निरतम् । शोणितमधातव्याजेन = दधिरप्रसाध
 लेन । अन्तरिपतो यो रजोराशि = रजोगुणमूहः, तमिवेषुन्नेष
 उद्गिरन्तम् = वमन्तम् । कलिनः = धारित, सायन्ननय = प्रायमवस
 घनाहम्बरस्य = मेघविहम्बनायाः, विभ्रमः = विडम्बो येन तन् । स
 तम् = सर्वदा, यत् ताम्रचूडस्य = कुक्कुटस्य, “कुकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कु
 श्रणासुध” इत्यमरः, भक्षणम् = भक्षणम्, तदेव पातकम् = पार्य तेनेव,
 ताघ्रीकृतम् = रक्तीकृतम् । छिन्नकन्धरम् = कृत्तप्रांयम् । सायकालिक

पृथ्वी पर छटक रहे, बिछुडती हुई. भारत भूमि का आलिङ्गन करते हुए
 से, निर्जीव हो रही अंगसंधियों को दिलाते और छत्रपाते हुए, दधिर राशि
 के बहाने भीतर के रजोगुण को उगडते हुए से, सायंकालीन मेघ के
 समान, मानों निरन्तर मुर्गा खाने के पाप से लाल हो गये, कटे हुए सिर
 वाले, दुष्ट यवन को देख कर, हर्षपूर्वक, घावाशी देते हुए, रोमाञ्चित
 होकर, गौरसिद्ध का आलिङ्गन कर के, आँलों के इशारे मात्र से आश्रित

इत्यु स्यन्त्र-यवनकुल-भुज्यमान-विजयपुराधीश-श्रेयित-
पुण्यनगरम् समीपे एष प्रक्षालिक-गण्डरील-मण्डलायाः, निर्मर-
धारिधारा-पूर-पूरित-प्रघट-प्रधाहायाः, पश्चिम-पारावार-प्रान्त-
प्रसृत-गारि-माम-गुहा-गर्भं निर्गताया अपि प्राच्य पयोनिधि-
सुम्बन्त-चक्षुराया, रिङ्गन्-सरङ्ग-भङ्गोद्भाषत्-क्षन्-भीमायाः,
दुग्गादिविर एव तिष्ठति स्मेति सम्बन्धः । अत्र दृश्यमानं विचित्रद्विस्वत-
न्त्रम् = स्वच्छन्दम् यद् यवनकुलं तेन भुज्यमानस्य = शास्यमानस्य,
विजयपुरस्य = सप्तमकनगरस्य, अधीश्वरेण, श्रेयित = प्रदितः ।
इदं साक्षात्किमिति दर्शनमात्रफलकं ननु साहित्यिकविवेचनया समुपयोगि
विश्लेषणमिति चेदित्यम् ।

अमाया नीरं बहुकुपंतिमिति सम्बन्धः । नदी विचित्रद्वि-प्रक्षालि-
तानि = पोतानि, गण्डरीलानाम् = गिरिच्युतखूलक्षिप्तानाम् मण्डलानि
यथा तस्याः । निर्मराणाम् = जलनिर्गमस्तोतसाम्, धारिधारापूरैः =
जलधारासमूहैः, पूरित = भरितः, प्रघटः = वेगवान्, प्रधाहो यस्या-
स्तस्याः । पश्चिमप्रासी पारावारः = समुद्रः "समुद्रोऽन्धरूपः पारावारः
सहितिरि" इत्यमरः, तस्य, प्रान्तं = निकटदेशं, यो गारीणां ग्रामः =
समुद्रः, एव गुहाः = गड्ढाणि तासु गर्भतः = मध्यात्, निर्गतायाः =
समुत्पन्नायाः । प्राच्यः = प्राचाभवः, यः पयोनिधिः, तच्छुम्बन्ते
चक्षुरायाः = चपलायाः । पश्चिमसमुद्रान्निःसृत्य पूर्वसमुद्रं प्रविशया इति
वाच्योऽर्थः । एवमुक्तिः वाभात्यरमणानां प्राच्यसंस्पर्धरूपसामप्रतिकल्पवहारो-
पशसाय । रिङ्गनाम् = सञ्चलनाम्, सरङ्गाणाम् = उन्मथनाम्, भङ्गः =

इत्थं स्वेच्छाचार्यं यवनो द्वारा शासित बीजापुर के अधिपति द्वारा
मेवा गया, पूना के समीप ही, पर्वतों से गिरे हुए बड़े-बड़े पथरों को धोने
वाली, सरतों की जलधाराओं से पूर्ण प्रबल प्रवाह वाली, पश्चिमी
सागर की सटकी पर्वत भेजियों का गुहाओं से निकली हुई भी पूरा समुद्र
को घूमने की उतावठा (पूरा समुद्र में गिरने वाली), चंचल सरतों के
दूधने से उत्पन्न होने वाले छेकड़ों भँवरों के कारण भयंकर लगने वाली

“रात्रिर्गमिष्यति मविष्यति मुप्रमातम्
 भास्यानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
 इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
 हा हन्त ! हन्त !! नलिनी गज उग्रहार ॥”

स्पष्टकम् ।

कपटपदुरपञ्चलानः शिवं निमग्नोऽपि कीर्तिमर्जयितुं विरहितविविध
 मनोरथः भ्रमता शिवेनैव निरुद्धो भूत्वाऽपि कृतश्चेति द्वितीयनिश्चातः
 कथाभागोपसृष्टायाऽऽद्यौ “रात्रिर्गमिष्यती”ति पद्यं समुल्लिखति । व्याप्य
 चास्य नितान्तमलम् । द्विरेकपदस्य द्वौ रेफौ मस्मिन्निति व्युत्पत्त्या रेफद्व-
 यवत्त्वेन भ्रमरपदोपस्थापनद्वारा मधुकरवाचकम्, योगरूढश्चेति नेतरसादृश-
 शब्दसदृशानुचिन्ता । भवति चात्र कोशः ‘द्विरेकपुष्पमिदं भूतपदपद-
 भ्रमरालम्’ इति । परं तु तेनैव धर्मेण लाघणिकं मन्यन्ते, तेषां निरुद्धिरेव
 कारणत्वेनानिग्रहा । अत्यन्तानन्दानन्दोभयविधमविषयपरमले सुदृष्टयोगस्यैवे-
 त्यन्वेऽपि पूर्वं विशेषादिवधायां लुटि ततो विशेषान्वेषणमिति स्थलेर्था-
 दरेण नासाधुत्वविषयकध्वान्तिरवलम्बनयेति शब्दः । अपञ्चलानः मता-

• श्रीः •

दिर्नीय निःशाम

“गन्तुं नैमी”, मुद्रायना प्रमाणं होमा, सूर्य उदित होमा, कमल गिरि
 उदिते (भ्रं र मै करर निवृत्त आर्द्रता)” कमल-कली के अन्दर बन्द
 होमा यह स्पष्ट ही रहा था कि कमल को हाथी ने उलाह दिया ।

इत्यनु स्वतन्त्र-यवनकुल-भुज्यमान-विजयपुरापोश-प्रेषितः
पुण्यनगरस्य समीपे एव प्रक्षालित-गण्डनील-मण्डलायाः, निर्मर-
धारिधारा-पूर-पूरित-प्रयल-प्रवाहायाः, पश्चिम-पारावार-प्रान्त-
प्रमृत्-गिरि-ग्राम-गुहा-गर्भ-निर्गताया अपि प्राच्य-पयोनिधि-
सुम्यन-चक्षुरायाः, रिङ्गन्-तरङ्ग-भङ्गोद्भवायत्त-शन-भीमायाः,
दुर्गादिकुर एव लिङ्गि स्मेति सम्बन्धः । अयमन्त-स्थानं विधिनदि-स्वत-
न्त्रम् = स्वच्छन्दम् यद् यवनकुलं तेन भुज्यमानस्य = शास्यमानस्य,
विजयपुरस्य = सप्तमकनगरस्य, अधीभरेण, प्रेषित = प्रहितः ।
इदं तात्कालिकस्थितिप्रदर्शनमात्रकण्ठं ननु साहित्यिकविवेचनना समुपयोगि
विशेषणमिति धेदितव्यम् ।

भोमाया नीरं बट्टकुर्यप्रिति सम्बन्धः । नदी विधिनदि-प्रक्षालि-
तानि = घोटानि, गण्डनीलानाम् = गिरिच्युतस्यूलशिखानाम् मण्डलानि
यथा तस्याः । निर्मराग्राम = जलनिर्गमस्रोतसाम्, धारिधारापूरैः =
जलधारासमूहैः, पूरितः = भरितः, प्रयलः = वेगवान्, प्रवाहो यस्या-
स्तथाः । पश्चिमआसी पारावारः = समुद्रः "समुद्रोऽन्धिरकृपायः पारावारः
कलित्यतिरि" स्वमाः, तस्य, प्रान्ते = निकटप्रदेशे, यो गिरीणां ग्रामः =
समूहः, तस्य गुहाः = गह्वराणि तासां गर्भतः = मध्यान्, निर्गतायाः =
समुत्पन्नायाः । प्राच्यः = प्राच्यमण्डलः, यः पयोनिधिः, तच्छुम्यने
चक्षुराया = चक्षुरायाः । पश्चिमसमुद्रान्निख्यत्वं पूर्वसमुद्रं प्रविष्टाया इति
वाच्योऽर्थः । एवमुक्तिः पाश्चात्यमणीनां प्राच्यसंपर्करूपसाम्प्रतिकव्यवहारो-
पहासाय । रिङ्गताम् = सञ्चलताम्, तरङ्गाणाम् = उमाणाम्, भङ्गं =

इधर स्वेच्छाधारी यवनों द्वारा शासित बीजापुर के अधिवसि द्वारा
मेका गया, पूना के समीप ही, पर्वतों से गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थरों को धोने
वाली, सरनी की जलधाराओं से पूर्ण प्रबल प्रवाह वाली, पश्चिमी
सागर की तटवर्ती पर्वत भेगियों की गुहाओं से निकली हुई भी पूना समुद्र
को घूमने की उठावली (पूना समुद्र में गिरने वाली), चंचल लहरों के
दृष्टे से उलझने होने वाले मैकड़ों मेंवरी के कारण भयंकर लगने

भीमाया नद्याः, अनवरत-निपतद्वकुल-कुल-कुमुम-कन-
सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमान-मत्त-मतङ्गज-मद-धाराभिः क-
कुर्यन्; ह्य-हेपा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-बधिरीकृत-गज्युति-मध्यगाध्वनी-
वर्गः, पट-कुटीर-कूट-विहित-शारदा-मोधर-विहम्बनः, निरपराध

छेदः, उद्धता. = उत्पन्नाः, ये आवर्णाः = अभ्रसाभ्रमाः, तैः भीमाया-
भ्रमदाविन्धाः । “घोरं भीम मशानकमि” त्यमरः । भीमायाः = ‘भीम-
नामवत्याः । अनवरतम् = सततम्, निपतताम् = प्रच्यवताम्, वकुलकुल-
कुमुमानाम् = वज्जुल-समूह सुमानान्, कदम्बेन = समूहेन, सुरभीकृतम्-
सुगन्धितामापादितम् । वगाहमानानाम् = प्रविशताम्, जलक्रीडा कुर्वन्-
मिति भावः, “वटि मागुरिस्तोषमवाप्योदसगोरी” त्यल्लोपः, मत्तानाम्-
दानभरितानाम्, मतङ्गजानाम् = करिणाम्, मदधाराभिः = दानवहैः ।
कटकरणे हेतुः । हयानाम् = अश्वानाम्, हेपा = ध्वनिः, यद्यपि हेपा-
शब्दोऽध्वशब्दे, “अश्वानां हेपा हंपा च निःस्वन” इत्यमरान् तथा चाध्व-
शब्दोऽक्षाणमनपेक्षितम्, तथापि विशिष्टवाचकपदानां सति विशेषणवाचक-
पदान्तरप्रयोगे विशेषमात्रादस्य “सकाचहेमादतपूर्णध्वैरि” त्यादि-
दृष्टत्वेन केवलनिःस्वनवाचकत्वेन नादवशब्दवैषम्यमिति वेदितव्यम् ।

मध्यनिश्वसिष्यन्तम् मधिगीकृत = धृतिसामर्प्यविकलकृतः
गज्युतिमध्यग = केशद्वयान्नगलवर्त्ता, “गज्युतिः स्वा क्रोशपुगमि” त्यमरः,
अध्वनीनवर्गः = पवित्रसमूहो येन सः । पटकुटीराणाम् = उपकारि-
काणाम्, ‘उपकाराकारिके” त्यमरः, कूटैः = समूहैः, विहिता, शार-
दा-मोधराणाम् = शरन्मेषानाम्, निर्वज्जनेन भ्रमवर्णनामिति तात्पर्यम्,

भीमा नद्य के निम्नर गिर रहे वज्जुल पुष्पी से सुशोभित जल को चक-
ता कर रहे मदमत शपिरी की मदभाग से और भी अधिक तीव्र गन्ध
व बनाता हुआ, घोंघी के दिनदिनाने की आवाज की प्रतिध्वनि से दो-
कंस एक के शपिरी की बराब बना देने वाला, सफेद सेमों के समूह से

द्वितीयो निश्वासः

भिजन-जन-पीडन-पातक-पटलैरिष्य समुद्रभूयमान-नीलध्वजै-
क्षितः, विजयपुरेश्वरम्यान्यतमः सेनानोः अपजलमानः प्रताप-
द्विदूर एष शिषवीरेण सदाऽऽह्वयन्तेन चित्रीद्विपुः समेन-
पुति स्म ।

अथ जगतः प्रभाजालमाकृत्य, कमलानि सम्मुद्रय, षोडश-
मशोषीकृत्य, सक्ल-चराचर-वस्तुसङ्घार-शक्ति-शिथिलीकृत्य,
पुण्डलेनेष निज-मण्डलेन पश्चिमामाज्ञां भूषयन्, पाशपी-सेवने-
विह्वलना-अनुहतिर्वेन सः । समुद्रभूयमानै-कर्ममानीः, नीलध्वजै-
नीलवताकामिः, उपलक्षितः-पुन । उत्पद्यते-निरपराधानाम्-
निर्दोषाणाम्, भारताभिजनानाम्-भारतीयानाम् । यद्य पूर्वद्विपु-
सदभिजनात्मनाऽऽत्म्यापते । तिष्ठति स्म-अतिदूर । 'एत स्म' इति
श्रुते लट् । अन्यतमः-अनेकेष्वर्थः । आह्वयन्तेन-मुद्रुगोदरेण ।

अथ भगवान् भातान् पशुपामगोचरा एव संज्ञात इति सादृश्यः ।
जगतः-संसारम् । प्रभाजालम्-दक्षिणगुहम् । आकृत्य-आपुङ्गवम् ।
सम्मुद्रय-मदीयम् । षोडश-षडशकम् । "षोडशशक" इत्यमरः ।
मशोषीकृत्य-दुःखिनी विधाया । दग्धलोः परस्पर विरोधेन शोकः ।
सक्लम्, चराचरम्-स्थावरजङ्गमात्मकम् । पशुपाम्-नेत्रकण्ठम् ।
सङ्घारम्-कार्यकरणम्, दर्शनम्-दृष्टिम् । पाशम्-शस्त्रम् ।
पुण्डलेन-कर्णभूषणेन । 'पुण्डलं कर्णभूषणम्' इत्यमरः । पाशमा-

शब्द के बादलों का उपहास करने वाला, निरपराध भारतीय जनता के उत्तर देने
से उत्तम पारवर्ति के समान न हो पाकर भी से परधाना जाने वाला,
षोडशपुराणों का प्रसार सेनारति अकृत्य भी, शिष्य के साथ पुनः
सुधा सेवने की दृष्टा से, प्रताप दुर्ग के गर्दीर हा पशुप दाले हुए हा ।
तदुपलब्ध, संसार के प्रकाश-समूह को शीघ्र बर, कमलों को संकुचित
कर, पक्षियों को शोकमग्न बर, मनुष्यों को शोकमग्न बर, पक्षियों को शोकमग्न
को शिथिल बर, अपने पुण्डल सदा सदा से पश्चिम दिशा के अर्थ
करते हुए, बावली (पश्चिम दिशा और मंदिर) के सेवन के कारण

भीमाया नद्याः, अनवरत-निपतद्बकुल-कुल-कुसुम-कन्द-
सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमान-भक्त-मतद्भज-मद-धाराभिः कृ-
कुर्यन्; हय-हेपा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-वधिरीकृत-गठयूति-मध्यगाध्वनी-
वर्गः, पट-कुटीर-कूट-विहित-शारदाम्मोघर-विहम्बनः, निरपराध-

छेदः, उद्धता = उत्तन्नाः, ये आवर्ताः = अम्मसा भ्रमाः, तैः भीमाया
भयदायिन्याः । “घोरं भीम भयानकमि” त्यमरः । भीमायाः = ‘मौन-
नामवत्प्राः । अनवरतम् = सततम्, निरतनाम् = प्रचयवताम्, बकुलकुल-
कुसुमानाम् = बकुल-समूह-कुसुमानाम्, कन्दम्बेन = समूहेन, सुरभीकृतम्
सुगन्धितामापादितम् । वगाहमानानाम् = प्रविशतान्, बलक्रीडो कुर्यन्
मिति भावः, “वटि भागुरिरत्नोपमवाप्योदयसर्गयोरि” त्यल्लोकाः, मत्तानाम्
दानभरितानाम्, मतद्भजानाम् = करिणाम्, मदधाराभिः = दानवतैः
पटूकरणे देवैः । हयानाम् = अश्वानाम्, हेपा = ध्वनिः, यद्यपि हे-
शब्दोऽश्वशब्दे, “अश्वानां देवा हंपा च निःस्वन” इत्यमरान् तथा चा-
शब्दोऽश्वरथमनपेक्षितम्, तथापि विशिष्टवाचकपदानां सति विशेषणवाच-
पदान्तरप्रयोगे विशेषमात्ररत्नस्य “सहोचर्षमादनपूर्णं (गौरि)” त्यागि-
हृत्वेन केवलनिःस्वनवाचकत्वेन नास्ति शब्दवैपर्ययमिति चेदित्यम् ।

तदुध्वनिप्रतिध्वनिं वधिरीकृतः = भुक्तिसामर्थ्यविकलकृत-
गठयूतिमध्यग = शब्दवत्तान्तरध्वनी, “गठयूतिः ग्वा कौशवृत्ति” त्यमरः
अध्वनीनवर्गः = वधिकसमूहो येन गः । पटकुटीराणाम् = उपका-
राणाम्, “उपकारावकारिके” त्यमरः, कूटैः = समूहैः, विहिता, शा-
दाम्मोघराणाम् = शल्मेयानाम्, निर्वज्जनेन श्वेतवर्णनामिति तात्पर्येन

भीमा नदी के निम्न गिर रहे बकुल पुष्पों से सुशोभित बल को ब-
हते हुए मरुत शक्ति को मरुता से और भी अधिक तीव्र ग-
न्ना बनाए हुआ, घोड़ों के दिनदिनाने की आवाज की प्रतिध्वनि से
कोन एक के घोड़ों की बहना देते बाज, सफेद सेवों के समूह

बाकौपुर में स्वामी महानन्द मरस्वनी और काशी में स्वामी दशानन्द मरस्वनी को भी आपकी प्रतिभा का लोहा मानना पड़ा। बहुत ज़रिफ़ चोळने के कारण आपको हृद् रोग हो गया।

स० १९५३ वि० में ही आरस स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा था। बीड़ों के मना करने पर भी आप धर्म-प्रचार में संलग्न रहे।

मार्गशीर्ष कृष्ण १३ सोमवार स० १९५७ वि० को गान के तीन बड़े आप पञ्च तत्त्व को प्राप्त हुए।

स्वाम जी में बिल्क्षण प्रतिभा थी। वक्ता और साहित्यकार होने के अतिरिक्त आप घतरज के भिलाड़ी, चित्रकार, मुडमवार और संगीतज्ञ भी थे। गितार, हारमोनियम, जङ्गरन, नमतारन और मृदंग बजाने में आप बड़े-बड़े गवैयों के कान काटने थे।

कविता लिखने में आपको अच्छी गति थी। 'द्रवस्नोक' आपकी रात भर की रचना है। एक घंटे में १०० श्लोक लिख सकने की क्षमता के कारण आपको 'घटिका शतक' की उपाधि मिली थी। आप 'सनातनधाम' भी थे।

साहित्याचार्य तो आप थे ही, न्याय, वेदान्त, दर्शन और व्याकरण पर भी आपको अधिकार था। हिन्दी, संस्कृत और बंगला में धारा प्रवाहिक वक्तूता करने थे। अंग्रेजी का भी आपको ज्ञान था। थियोसोफिस्ट कर्नल अल्फाट और जार्ज शिम्सॉन ने आपको तेजस्विता और वक्तूत्व शक्ति को बड़ी प्रशंसा की थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में लिख विनयक के कथानक पर 'नामवतम् नाटक' की रचना स्वामजी की असाधारण प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'सौध लेख' प्रणाली पर भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी। पाणिनि की मूल-पद्धति पर आने 'आरंभादा मूलाधार' नामक हिन्दी व्याकरण लिखना प्रारम्भ कर दिया था, जो आपको अस्माधिक मृत्यु के पञ्चस्वरूप अमूर्त गया।

विचिन्तु, "नामिह कोर्जोप मन्त्रुले; यः सकण्ठपट् धर्म-वसिनो
यवनहतवाच यस्मिन्साहसमाह भारत-गर्भाभिस्मात्वेन" इति चिन्ताऽऽ-
माना इव कर्त्तरि चन्द्रेणु प्रविशितुर्भगवान् भागवान्, कमशः क्र-
कान्तपहाव, हृदय-परिपूर्ण-मण्डल मन्दुव, इरेतीभूव, पीपीभूव,
रणीभूव च गगन-धगतत्याभ्यामुभयत आक्रम्यमाण इवाण्टाहृति-
मर्त्रीकृत्य, कलि-कौतुक-वचलीकृत-सदाचार-वपारस्य पातक-
पुञ्ज-परिञ्जित-धर्मस्य च यवन-नाम-मात्रस्य भारतवर्षस्य च
स्मारयन्, अन्धगमसे च जगत् पातयेन्, चक्षुषामगोचर एव संजानः।

आहुति-उक्ति । अक्षगन्ध = शक्ता । विचिन्तु = विचिन्तुः । सकण्ठ-
पटम् = कण्ठ परता । अर्धचन्द्र इत्येतत् । वनुकृतम् । वसियान् =
यवनजनसंघात् । "यस्मिन्साहसमाह" इति यः । प्रविशितुः = नैवेष्टु-
निष्ठाः । क्रकान्तपहाव = अत्रिहिरण्यम् । हृदयम् = अन्तर्हृदयपरम्,
सम्पूर्णम् = सनातनम्, मण्डलम् = चिह्नं, यस्य सः । इरेतीभूत्यादि
स्वनावादिः । अण्टाहृतिम् = एवाण्टाहृतिरेवोदेवस्तमेति चेति कश्च-
चउपलब्धोक्तेन प्रतायते । अत्र सर्वभोक्तेषां । कलि-कौतुकेन = कलिपुग-
कौतुकेन, वचलीकृतम् = विनयस्य । पातकपुञ्जेन = अपातयेन, पिञ्ज-
रितस्य = पातकस्य । चर्चर कृतस्तेति भावः । धर्मस्य = सनातन-
धर्मस्य । भारतवर्षस्य च स्मारयन्तित्यत्र "अधगम्यदेष्टामि" इति कर्मणि

समय हुआ जान कर संन्याससुख करने के इच्छुक से, 'जो कुन में ऐसा कोई
भी व्यक्ति नहीं है जो धर्म-धर्मों यवनो को इस बड़ योग्य-नृति से गर्दनिया
देकर निश्चय बाहर कर' इस प्रकार चिन्तित से होकर परित को गुना में
प्रवेश करने के इच्छुक से भागवान् सूर्य, कमशः लोको हिरण्यो को छोड़
अपने मारे चिन्त को दर्शन योग्य बना कर, पहल सफेद, गिर पीछे और
गिर छात्र होकर आकाश और पृथ्वी दोनों ओर से दबाये जा रहे से
अण्टाधार बन कर, कलिपुग के प्रताप से विनष्ट सगचार वाले, पारतापि
से वाले वह धर्म वाले तथा यवनो से प्रत्य भारतवर्ष का स्मरण कराते हुए

नेव माञ्जिष्ठ-मञ्जिम-रञ्जितः, अनवरत-भ्रमण-परिभ्रम-क
इव सुषुम्भः, म्लेच्छ-गण-दुराचार-दुःस्वाम्यः॥५॥कान्त-वसुमती-वेद
मिव समुद्रशाधिनि निविवेदयिषुः, वैदिक-धर्म-ध्वंस-दर्शन-संज्ञ
निर्वेद इव गिरिगद्गनेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः धर्म-ताप-तप इ
समुद्रजले सिन्धुः, सायं समयमवगम्य सन्ध्योपासनमि

चासो, आशा = काष्ठा, ताम् । “दिशन्तु ककुमः काष्ठा आशा
हरितश्च ता” इत्यमरः, वरुणस्यैवं वारुणी = पश्चिमा दिग् नक्षत्र, “तु
प्रत्यम् च वारुणा” इत्यमरः । मञ्जिष्ठायाः = मण्डूकपर्णाः, “मण्डूक
इति हिन्दी, अयं माञ्जिष्ठः, स चासो मञ्जिष्ठा = रक्तिमा, तेन रञ्जितः
रक्तः । यथा बनो वारुणोः मुग) पानानन्तरं शीतवर्णो भवति तथ
मास्करोऽपि वारुणो- (पश्चिमा) सततान्तरं शीतः संज्ञात इत्युद्देशः ।
अनवरत-भ्रमण-परिभ्रम-श्रान्तः = सततचलनसेदक्षिणः । सुषुम्भः =
सन्ध्योपासुः । स्वामादिषु परमाकटशक्तिः सेदकारणकृष्णनेत्रावत्तेनो-
त्प्रेक्षिता । म्लेच्छगणस्य = यवनसमूहस्य, दुराचारेः = अशु-
चरणैः गोहनननन्दिरर्षसन्नादिभिः, दुःस्वाम्यः = कष्टप्रदितारा,
वसुमत्याः = वसिष्ठाः, वेदनाम् = प. राम । समुद्रशाधिनि =
रिपौ । निविवेदयिषुः = निवेदयितुमिच्छुः । स इवेवमुद्देशः ।
वदस्येयस्य कसारं निवेदनयन्तिति भावः । वैदिकधर्मस्य =
सनातनधर्मस्य, ध्वंसदर्शनेन = विनाशालोकनेन, सञ्ज्ञातः =
कटुवचः, निर्वेद = वेगात् परम म इव । गिरिगद्गनेषु = पर्वतदुर्गमेषु ।
चिकीर्षुः = कटुवचः । सिन्धुः = सानुनिच्छुः । सत दि तपः

मण्डूक की लक्षिमा से काष्ठ, निम्नतर भ्रमण करने के परिभ्रम से पक से
काने क इच्छु, म्लेच्छों के अनाचारों से दुःस्वाम्य का वेदना को मण्डूक
के काष्ठ इत्यादि से करने क इच्छु के, वेदक धर्म के ध्वंस को वेदक
निवेद के होकर दुर्गम पर्वतों में वारुण दल करने के इच्छु, ताप-तप का

विधिगुः, "नास्ति कोऽपि सङ्कुले, यः सकण्ठग्रहं धर्म-वसितो
वचनद्वयानयतिवाहनाद् भागन-नार्जितसाधयेत्" इति पिन्नाऽऽ-
काञ्च इव कन्दरि-वन्दरेषु प्राञ्चिकितुर्भगवान् भाग्यान्, क्रमशः क्र-
हरानपहाय, हृदय-परिपूर्ण-मण्डलं मंथ्य, इरेतीभूय, पीनीभूय,
एग्रीभूय च गगन-धगगलाभ्यामुभयत्र आवस्यमान इवाण्डाकृति-
मङ्गीकृत्य, कलि-कौतुक-वधलीकृत-सदाचार-वधारस्य पातक-
पुञ्ज-पिञ्जलि-धर्मस्य च खनन-नाम-भारस्य भारतवर्षस्य च
स्मारयन्, अन्धतमसे च जगत् पातयेन्, चक्षुःशमनोपर एव संजातः।

नानुमिच्छति । अवगम्य = ज्ञात्वा । विधिगुः = विद्वन्मनुः । सकण्ठ-
ग्रहम् = कण्ठ ग्रहत्वा । धर्मवन्तं हरेत्यर्थः । जनुकन्तु । यस्मिन्ना-
वदकाननोभ्याम् । "वर्तितम्वा पलमानि"ति यः । प्रविबिधुः = प्रवेष्टु-
मिच्छुः । क्रमवदान् = क्रमविरणान् । हृदयम् = मन्त्रोक्तविमर्शम्,
सम्पूर्णम् = समस्तम्, मण्डलम् = विध्वं, यस्य सः । इरेतीभूत्यादि
स्वाभावोक्तिः । अण्डाकृतिम् = गूढाण्डाकृतिरेवोदेत्यस्तमेति चेति सत्य-
व्यक्तोक्तेन प्रतापते । अथ सर्वभोध्यथा । कलि-कौतुकेन = कलिपु-
ण्डरीकेन, वधलीकृत्य = विनष्टस्य । पातकपुञ्जेन = धर्मपुंज, पिञ्ज-
लितस्य = पातवर्णस्य । बर-कृतस्येति भावः । धर्मस्य = सनातन-
धर्मस्य । भाग्यवर्षस्य च स्मारयन्नित्यय "अर्थगर्भदेशामि"ति कर्मणि

समय हुआ जान कर मन्त्रोपासन करने के ह्वात्कुसे, 'मेरे कुल में ऐसा कोई
भी व्यक्ति नहीं है जो धर्म-धर्मी बनने को इस यत्न योग्य भूमि से गर्दनिर्वा
देकर निधाम बाहर कर' इस प्रकार चिन्तित से होकर परत की गुना में
प्रवेश करने के ह्वात्कुसे भगवान् पूर्व, क्रमशः तानवी क्षिणा को छोड़
अग्ने सारे दिग्ग को दर्शन योग्य बना कर, पहलं सफेद, निर पाले और
निर छाल होकर आकाश और पृथ्वी दोनों ओर से दबाये जा रहे से
अण्डाकार बन कर, कलिपुण के प्रताप से विनष्ट सदाचार वाले, पापार्थि
से पाले वड़े धर्म वाले तथा मरने से प्रल भाग्यवर्ष का स्मरण कराते

ततःसंपृच्छे किञ्चिदन्धकारे धूप-धूमेनेव व्यावृत्तम् इति
भुशुण्डी स्तब्धे निधाय निपुणं निरीक्षमाणः, आगत-प्रत्यागत-
विदधानः, प्रताप-दुर्ग-दीवारिकः, कस्यापि पादक्षेप-ध्वनिं
श्रीयोत् । ननः स्थिरीमूय पुरतः पश्यन् सत्यपि दीप-प्रकाशेऽपि
मनवशादागन्तारं कमप्यनवलोकयन्, गम्भीरस्वरेणैवमवादीत्
“कः कोऽयं भोः ? कः कोऽयं भोः ?” इति ।

अथ क्षणानन्तरं पुनः स एव पादध्वनिरुवाचोति भूयः न
क्षेपमयांचन्—“क एव मामनुसरन् नुमृपुः समायाति यधिरः ?”

पद्या । अन्यतमस्ये = गाइवान्ते । ‘ध्वान्ते गच्छेऽधतमस्ये’ तदर्थः ।
चक्षुषामगोचरः = अदृश्यः । मूयंस्त्वमनयेषादन्विश्यः ।

हस्तिमु = शिषु । भुशुण्डीम् = भाषुषविशेषम् । “कन्डूक” इति हिन्दु
आगतप्रत्यागतम् = यातायातम् । विदधानः = कुतूहलः । प्रतापदुर्गम् =
तन्मात्रा ग्यानदुर्गम्, “हिन्दा” इति हिन्दो, दीवारिकः = शरणाः । पाद-
क्षेप-ध्वनिम् = चरणचरकमगमनम् । अवनतमसम् = क्षीणज्वान्तम् “अ-
मन्येऽन्नमसम्” इति मूयेण समासालोड्य, तस्य, यशान् सामर्थ्यम्

नगर की पार अन्धकार में टंकलते हुए, आँखों से ओझल हो गए
उसके बाद, कुछ अँवला हो जाने पर और दिखाओ के नाना ध्व-
उठने वाले धूम से ज्ञात हो जाने पर कन्डूक को अपने पर गत कर मैं
से हटा डार दे-ने के हुए और गलत लगाने हुए प्रत्यक्ष दुर्ग के शरणा-
हिन्दा के पैर का आदर भी मुनी । तब मंद होकर, जानने देमकर, दीप
का प्रकाश होने हुए, जो भूतजन के कारण अपने नाके को न देकर
उत्तरे गन्तर नर से कहा “अरे यहाँ पर कोन दे ? यह कोन दे ?”

यस नर बाद फिर बड़ा पैरों का आदर मून पड़ा, समझते कि
हिन्दु कर देना, “अरे यह कोन बड़ा हिन्दा दुर्ग बराबर दिखे हा माने
हिन्दे बड़ा बड़ा आ रहा दे ?”

ततो "दीवारिक ! शान्तो भव, किमिति व्यर्थं मुमूर्षुर्गतिं यधिर
हति च यदसि ?" इति वक्तारमपश्येत्तैवाऽऽकर्णं मन्दस्वरेण मेदुरा
यात्री । अथ "तत्किं नामासि अद्यापि भयता प्रमुषय्यागामादेशो यद्
दीवारिकेण प्रहरिणा वा त्रिःपृष्ठोऽपि प्रतुनरमवद्द् हन्तव्य इति"
इत्येवं भाषमाणेन द्वारिणेन "क्षम्यतामिव आगच्छामि, आगत्य च
नितिरलं निवेदयामि" इति कथयन्, द्वादशवर्षेण केनापि भिक्षु-
घटुनाऽनुगम्यमानः, कोऽपि कापायवामाः, धृत-तुम्बो-पात्रः, भस्म-
चक्षुरिति ललाटः रुद्राक्ष-मालिका-सनाथिन-कण्ठः, भव्यमूर्ध्निः
संन्यासी दृष्टः । ततस्तयोरेवमभवालापः ।

मुमूर्षुः = मुमुक्षुः । मन्दस्वरेण = गम्भीरनादेन, मेदुरा = सान्द्र-
स्तिवा । "सान्द्रस्तिवास्तु मेदुर" इत्यमरः । अपश्यता = अनुरोधमानेन,
दीवारिकेणेति शेषः । आकर्णं = धृतः । अद्यापि = अतः । भुनक्ति
यावत् । द्वारि तिष्ठतीति द्वारिणः = द्वारपालः, तेन । प्रहरिणा = शमिनेन ।
नगरादिषु सशब्द जननावागरकेण चौरनिवारिविधेति यावत् । वक्तारो रक्तं
कापायाम्, दासो यव्य सः । त्रि = त्रारषट्म् । "द्वित्रिचक्षुरिति

उत्तरभात् उत्त दीवारिक ने सोलने वाले को न देखते हुए 'द्वारपाल !
शान्त रहो, क्यों बेकार मरणासन्न और दरंग करते हो ?' यह गम्भीर
स्वर से शिम्भ बाणी सुनी । उसके बाद 'तो क्या आपको अभी तक महा-
शब्द शिवाजी का यह आदेश नहीं मालूम है कि द्वारपाल या परदेशार
के तीन बार पूछने पर भी जो व्यक्ति उत्तर न दे उसे सोल मार दा आब'
यह करते हुए द्वारपाल ने, 'छमा करो मैं भी रहा हूँ, आकर साग दाक
बना डूंगा' यह करते हुए, बारह साल के किसी भिक्षु दासक के आने-आने
आते हुए किसी बापाय दासपारी, तुम्बा पात्र लिये हुए, दासक पर भस्म
लगाये तथा गले में रुद्राक्ष का माला पहने किस 'भव्यमूर्ध्नि संन्यास' को
देखा । फिर उन दोनों में आरस से इस प्रकार वार्तावत हुई ।

संन्यासी—कथमस्मान् संन्यासिनोऽपि कठोरभाषणैस्ति
शकरोपि ?

दीवारिकः—भगवन् ! भवान् संन्यासी प्रणम्यते, परन्तु प्रभूणामाज्ञामुल्लङ्घय
तीत्याकुश्यते ।

संन्यासी—सत्यं श्रान्तोऽयमपराधः, परमद्यावधि संन्यासिन
प्रक्षारिणः, पण्डिताः, स्त्रियः, बालाश्च न किमपि प्रष्टव्यं,
आत्मानमपरिचाययन्तोऽपि प्रवेष्टव्याः ।

कूलोऽयं" । कदाशमालिकया, सनाथितः = भूषितः, कण्ठो यत्वं सः।
आलापः = अन्योन्यसम्बोधनपूर्वकभाषणम् ।

तुरीयाश्रमसेवी = चतुर्थाश्रमवासी । "स संन्यासी च योगी च न
निर्मितं चाक्रिय" इति भगवद्वचनेन संन्यासिपदस्य न चतुर्थाश्रम-नैरि-
कारिमात्रकृतेति धनवता पदद्वयं निरोध्यविरोधमभावेनोपात्तमिति विज्ञाः ।
अदृग्न् = अगच्छन्, "ताम्यस्तादि"ति नुम्निपेयः ।

अपरिचाययन्तः = परिचयमरहतः । अपरिचितानपि प्रवेशयेति भावः ।

संन्यासी—तुम हम संन्यासियों को भी कठोर बचनों द्वारा अपमानित
करते हो ।

दीवारिक—भगवन् ! आप संन्यासी हैं, चतुर्थ आश्रम में हैं, अतः
मैं आप को दण्ड्य हूँ, किन्तु आप महाशय का आवाज उठाने
का मानस करार दिव्य विना ही भा रहे हैं । इसीसे हम आप पर
विमर्श कर रहे हैं ।

संन्यासी—सच है, अच्छा तुम्हारा यह भाषण मैंने सुना कर दिया,
लेकिन आज से मैं संन्यासी, ब्रह्मचारी, पण्डित, निरी, और ब्राह्मण से
कुछ भी मत कहना, और यदि वे माना परिचय न दें तो भी उन्हें
मन्दिर जान की मन्त्रों से दे देना ।

द्वितीयो निश्वासः

दीवारिकः—संन्यासिन् ! संन्यासिन् ! बहुतम्, विरम, न दीवारिका ब्रह्मणोऽप्याशां प्रतीक्षामहे । किन्तु यो वैदिकधर्म-ग्रन्थो, यश्च संन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च संन्यासस्य चर्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसयिनोयनुच्यते ह्यग्रेष्ठ-भूमिः, तस्यैव महाराज-शिववीरस्याऽऽशां वयं शिरसा मः ।

संन्यासी—अथ किमप्यस्तु, पन्थानं निर्दिश, आवां शिववीर-कटे जिगमिषावः ।

दीवारिकः—अलमाल्यापि तन्, प्राज्ञे महाराजस्य संन्योपा-संन्यासिनमित्यादिविषयस्य संन्यासस्येत्यादिविषयेन यथासङ्ग-मन्वयः । अत एव यथासङ्गयनामाऽङ्गद्वयः । शिरसा यदामः = सर्वेषां पालयामः । अन्तरायाणाम् = विघ्नानाम् । “विघ्नोऽन्तरायः प्रतूर” इत्यमरः । हन्ता = निवारयिता ।

अलमाल्यापि = इदमालम्बनीयमपि नास्त्यर्थः । “अलं खल्वोः प्रातिषेधयोः प्राचां क्त्वे”ति क्त्वा प्रत्ययः । यथा यानुन्तले “अलं कर्त्तव्यं, ननु भवतीत्यामेव विपर्ययसंन्या यानुन्तले”त्यत्र, शिष्टाश्रमवधे “आलम्ब्याल-मिदं बभूवैत्स दायनशरदि” त्यत्र च प्रसिद्धोऽयम् । प्राज्ञे = पूर्वज्ञे ।

दीवारिकः—संन्यासी ! संन्यासी ! बहुत कर चुके, अब बस करो, हम दीवारिक लोग ब्रह्म की भाखा को भी परखाइ नहीं करते, बल्कि किन्हीं वैदिक धर्म की रक्षा का मत ले रखा है, जो संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, तपस्वियों, तथा संन्यास, ब्रह्मचर्य और तप के विघ्नो के नाशक है, बिन के कारण ही कोट्टण देश की भूमि वीर्यवान् (वीरों को बन्ध देने वाला) कहालाती है, इसी महाराज शिवजी की भाखा को शिरोधार्य करते हैं ।

संन्यासी—अच्छा जो कुछ ना हो, हमें सस्ता दिखानो, हम वीर शिवजी के पास जाना चाहते हैं ।

दीवारिकः—उसका नाम भोजन लब्धिवे, आरकेसे लोगों के लिए

मनममये भगवद्भक्तानां योग-ममयो भवति न तु मयो ।

मन्यामो—न कि कोटि न प्रविर्ता मयो ?

दीवारिक—(कथम्) कोटि कथं न विवर्तते ? पतिं न
या प्रातःप्रतिपद्यता या आहुता या योग्यान्, न तु न
दशाः, ये तुम्हो गृहीता दाम् इ दाम्—इति कथयन्ते न तेजो
धर्मिता मय न विवर्तते ।

मन्यामो—(स्वगतम्) राजनीति-निष्ठाः शिष्याः । नरे
दीवारिकता—योग्य पदार्थ दारपालः स्वापिनोऽस्मि । परोक्षित्ये
नर्मकर्मन विषये पुनः परोक्षित्ये नायम् । (दृष्टम्) दीवारिक
इति आयाह, किमापि नरे कथयिष्यामि ।

दीवारिक—(तथा कृत्वा) कथयाम् ।

तुम्हो=अत्यवसायम् । निष्ठाभाजनमिति मन्त्रयन् । धर्मितः=नि
राजनीती, निष्ठाः=निष्ठाः । “प्रवर्गे निष्ठाभिधित्येन
शिक्षिता” इत्यमरः । दीवारिकता=दारपालकर्म । परोक्षित्ये=न
करिष्ये ।

समय प्रातःकाल महारात्र के सन्ध्योरात्र के समय होता है, न कि रात्र

मन्यामो—तो क्या रात्र में कोई नहीं आता ?

दीवारिक—(विगड़ता हुआ) ‘कोई कैसे नहीं आता ? महारात्र
परिचित लोग, परिचय-यत्र प्रातः लोग या आग्नि-लोग, आते हैं,
कि आप के से लोग जो तुम्हो डिये दरवाजे से दरवाजे’—यह कहते
कहते मानो उसके तब से बचकर वह बाच में हा रुक गया ।

सन्ध्या—(अपने मन में) शिवाजी राजनीति में कुछ है
उन्होंने पहरेदारी के योग्य ही दारपाल नियुक्त किया है । यद्यपि मैं इन
परीक्षा ले चुका हूँ, फिर भी मैं इसकी एक विषय पर पुनः परीक्षा दूँ
(प्रकाश में) दारपाल ! इधर आओ, कुछ तुम्हारे ज्ञान में कहूँ
दीवारिक—(बैठा ही कर के) कहिये ।

द्वितीयो निश्वासः

मन्यासी—निरीक्षस्व त्वमधुना दीवारिकोऽसि, प्राजानगण-
जीविका निर्वहसि, त्वं सदसं वाऽयुनं वा मुद्रा राशीकृताः
पि प्राप्स्यसीति न कथमपि संभाव्यते ।

दीवारिकः—आम्, अग्रे कथ्यताम् ।
मन्यासी—वयस्य संन्यासिनो यन्तु निरिकन्दरेषु च
वचनम्, सर्वं रसायन-तत्त्वं विद्मः ।

दीवारिकः—स्यादेवम्, अग्रे अग्रे ?
मन्यासी—तद् यदि त्व मा प्रविशन्तं न प्रतिगन्धे तदधुनेव
परिष्कृतं पारद-मन्म तुल्यं दद्याम् ; यथा त्व गुञ्जामात्रेणापि
द्वापञ्चाशत्सहस्रपाक-तुल्यापरिमितं ताम्रं जाम्बूनदं विधातुं शक्नुयाः ।

निरीक्षस्व = अवलोकय । त्वम् = निस्स्वः साधारणदीवारिकः कलनेन
जीविका निर्वहसि = अग्निः । अत एव तद्वयोमा, अन्यथा
‘निरिच्छये’ त्वेनेनैव गतार्थता स्यात् । रसायनानाम् = ताम्रादीनां
गुञ्जामादिनिर्माणशक्तिमतामोषविशेषाणाम्, तत्त्वम् = सामर्थ्यम् ।
प्रतिगन्धेः = प्रतिवारधेः । ‘कथिर् आचरणे’ इत्यस्य विधीं सिद्धि
रुन् । परिष्कृतम् = मुमाधितम् । तुला = पलानां घनम् । “तुला

मन्यासी—देवी इस समय तुम शायल हो, माणो का बाजी लगा-
कर जीवन निचाई करते हो, तुम क्या हजार दस हजार रुपये एकट्ठे पा-
नाभोगे यह किसी भी तरह सम्भव नहीं है ।

दीवारिक—हाँ, आगे कहिये ।

मन्यासी—आर हम मन्यासी लोग वजी और पदत-कन्दराओं में
विश्रुते हैं, हम सारा रसायन-वदस्य माइम है ।

दीवारिक—हो सकता है, आगे और आगे कहिये ।

मन्यासी—हो यदि तुम मुझे अन्दर खाने से न रोको, तो मैं अम-
तुम्हें छोड़िब पारे की भरम दे दूँ, जिससे तुम रसी भर से भी लगन-
भर कर लगे की सोना बना सकोगे ।

[दौवारिकः—हंहो ! कपटसंन्यासिन् !! कथं विश्वासघात स्वामिबद्धनद्ध शिक्षयसि ? ते केवनान्ये भवन्ति जार-जाता, ये उत्कोच-लोभेन स्वामिनं बद्धायित्वा आत्मानमन्धतमसे पातयन्ति, न वयं शिवगणास्तादृशाः । (संन्यासिनो हस्तं धृत्वा) इदम् सत्यं कथय कस्यम् ? कुत आयातः ? केन वा प्रेषितः ?)

संन्यासी—(स्मितेव) अथ त्वं मां फं मन्यसे ?

दौवारिकः—अहं तु त्वामस्यैव समेनस्याऽऽयातस्य अपजङ्ग खानस्य—

संन्यासी—(विनिवार्य मध्य एव) धिगु धिगु !

दौवारिकः—कस्याप्यन्यस्य वा गूढचरं मन्ये । तदादेशं पालयिष्यामि प्रभुवर्यस्य । (हस्तमाकृष्य) आगच्छ दुर्गाध्यक्ष-समीपे,

स्त्रियां पलशतमि” त्वमरः । ताम्रम्, धातुनाम । जाम्बूनदम् = मुवर्णम् ।

जारजाताः, “अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तारि गोलक” इति कोशात् पत्न्यौ जीवति परपुरुषेण समुत्पादिता जारजाता इत्युच्यन्ते, अत्र

दौवारिक—अच्छा जी ! क्यों रे कपटी संन्यासी विश्वासघात ओ स्वामी को छलने की शिक्षा देता है ? वे हरामजादे कोई दूसरे ही होते हैं जो धूम के झालच से स्वामी को छल कर अपने को नरक में डालते हैं । महाराज शिवाजी के सेवक हम लोग ऐसे नहीं हैं । (संन्यासी का हाथ पकड़ कर) अच्छा, अब सच-सच कह तु कोन है, कहाँ से आया है, या तुझे किसने भेजा है !

संन्यासी—(मुस्कराता हुआ सा) अच्छा तुम मुझे कौन समझते हो ?

दौवारिक—मैं तो तुझे इसी सेना सहित आये हुये अफजल खॉ का-

संन्यासी—(बीच ही में रोककर) छिः छिः !!

दौवारिक—या किसी दूसरे का गुप्तचर समझता हूँ, अतः मैं महाराज के आदेश का पालन करूँगा । (हाथ खींच कर) इधर आओ, दुर्गाध्य-

की की मृत्यु के समय उनके पुत्र प० राधाकुमार व्यास की
 व की थी और राधाकुमार जी की मृत्यु के समय उनके पुत्र
 कुमार जी ९ वर्ष के थे। यही कारण है कि श्यामजी की
 इतिहास नष्ट हो गई है। श्यामजी के उरुद्वार माहिद के
 अन्वयन की ओर बिद्वानों को ध्यान देना चाहिए।

शिवराज-विजय

'शिवराज-विजय' संस्कृत वाङ्मय का प्रथम ऐतिहासिक उन्मास
 । उन्मास अन्मासों में प्रकरणों में लिखा जाने वाला कल्पित समुक्त
 और विवेचनात्मक गद्य रचना का यह प्रकार है—जो जन जीवन के परस्पर
 सम्बन्ध चरित्रों और बायों का प्रतिनिधित्व करता है। संस्कृत के गद्य
 काव्यों की समीची पर गद्य उतरते हुए भी 'शिवराज-विजय' वस्तुतः
 है उन्मास ही। शिवराज-विजय का शायद किशोर, अलकरण
 और गद्यरत्न वाङ्मयी में प्रभावित जान पड़ता है, किन्तु रूप-शिल्प
 की दृष्टि में यह रचना बहिष्कार के गद्य काव्यों से दूर। 'दशकुमार
 विजय' है उसी ही गद्य के गद्य काव्यों से दूर। 'दशकुमार
 चरित्र' का कथानक कमल की पत्रिका में है, एक आश्विन का
 अन्त इसके का प्रारम्भ है। इसके विपरीत 'शिवराज-विजय' का
 कथानक उल्टी हुई पृथिवी ललित की भाँति है। 'दशकुमारचरित्र'
 का रूप-शिल्प पौराणिक कथाओं जैसा है, अर्थात् उसमें एक कथा
 कथाकार है और एक या एकाधिक धोता। अन्त में पूर्ण अनेक स्वतन्त्र
 लघु आख्यायिकाएँ मिलकर एक बड़े आश्विन की जगह देती हैं।
 'शिवराज-विजय' का रूप और आश्विन उन्मासों जैसा है, लेखक
 वातावरण बताकर पाठकों को अपने चरित्रों के बीच में बँटा देता है,
 जहाँ वे लक्ष्म्य दर्शक की भाँति उनके क्रिया-बलान्तर देखते हैं। 'शिवराज-
 विजय' में दो स्वतन्त्र कथा-धाराएँ समानान्तर बढ़ती हैं एक का नायक

॥ अहोरात्रं जगतां सर्वत्र भवति ॥

नमः शिवाय नमः शिवाय नमः पुनरावृत्ति, मां पुनरेव कथ-
यितुमिच्छामि, अतएव नमः शिवाय नमः शिवाय नमः शिवाय नमः
शिवाय नमः शिवाय नमः शिवाय नमः शिवाय नमः शिवाय नमः ।

अथ द्वावद्वय इत्यस्य—अथ दोषं विना विनाशं वाच-मनुष्याणां
 लाघवमिति सत्यं—अथ द्वावद्वय दोषं विना विनाशं वाच-
 मनुष्याणां सत्यं—“दोषं विना ! अपि मां पृथमपि ब्रह्माण्युदाधोः ?”
 नतो दोषं विना पुनश्च निजं निगीधमानो मन्त्रेण स्वरेण, अहना-
 वाहनाभ्यां होषनाभ्याम्, गौरवरेण षण्णेन पुष्पिनयीषणेन वयसा,
 निर्भीक्ष्णं हारिणा च सुन्द-मण्डलेन पर्यविनोत् । भुगुण्डी सम-

निन्दापञ्चम् । उक्तोपो निन्दा “इष” इति, “विपश्य” इति बोध्यते ।

वाचस्पतिना मङ्गला वाचस्पत्यङ्गुला = मङ्गलार्तिना । "लाभ्यते" इति
 रिप्तिः । अथाह = नेषमान्भावात् । "भगवद्भौ नेषयेरन्तावि"त्वमरः ।
 कुम्भिनम् = मृदम्, पौषिनम् = नक्षत्रो देव तेन । निर्भाविणम् =
 भस्मस्तेन । हारिणा = मनोरमेण । पर्यायिनोम् = परिचितवान् ।

ये समय सभी, यह मोच-समाजक और तुम्हें परधान कर तुम्हारे साथ
बैसा उचित समझेंगे बैसा व्यवहार करेंगे ।

उसके बाद संजामी ने "छोड़ दिये, मैं फिर नहीं आऊँगा, ऐसी बात नहीं कहूँगा, आप बड़े उदार हैं, दया कीजिये, दया कीजिये" ऐसा हथेली काट रहा, या हाँवाकित फिर भा ठोसे सींच ही ले गया ।

मदनमोहन द्वारपाल के पारक पर रखा स्लाइडेन में बस रहे मल्ल
प्रकाश वाले दारक के समक्ष पहुँचने पर सन्वासी ने कहा, 'द्वारपाल !
क्या गुप्तो तुमने कभी पारले भी देला है ?' तब द्वारपाल ने पुनः उसे गौर
में देख कर, उसके गम्भीर स्वर, धाराक नेत्र प्रान्त वाली आँखों, मोटे
रिंग, उमहर रही नई बकाली और निर्भीक तथा मनोहर

सौन्दर्य-किंग-ककेश-करप्रहमपहाय, सलज्ज इव च नम्रोभूय, प्रण-
मभ्रुवाच—“आः ! कथं श्रीमान् गौरसिंह आर्यः ? क्षम्यतामनुचित-
व्यवहार एतस्य ग्राम्य-वराकस्य” । तदवधार्य तस्य पृष्ठे हस्तं
विन्यस्यन् संन्यासिरूपो गौरसिंहः समवोचत्—“दीवारिक ! मया
पट्टगः परोक्षिनोऽसि, मानोऽसि यथायोग्य एव पदे नियुक्तोऽसि
येति । त्यादक्षा एव प्रभूणां पुरस्कारभाजनानि भवन्ति, लोकद्वयञ्च
वित्तयन्ते । तव प्रामाणिकतां जानीत एवाश्रमवान् प्रभुपत्यं,
परमहंसपि विशिष्य कोर्नयिष्यामि । निर्दिश तायन् कुत्र श्रीमान् !
किञ्चानुनिष्ठति ?)

ततः पुनर्यदाशलेदीवारिकस्य किमपि कर्णे कथितमाकर्ण्य

भुशुण्ड्या = आशुभसिंहस्य, समुनोलनेन = उत्थारनेन, यः किञ्च =
चिह्नमित्यर्थः । तेन ककेशस्य = कटोरस्य, करस्य, पट्टः = पट्टगम् । गौरसिंहः
कथानागं पूर्वं गौरप्रहमपहाया समावलीटपमेवेति न विस्मर्तव्यम् ।

उत्ते पदचान निगा । पदचानो हा, बन्दूक उठाने से निगमे पड़े पड़ गये
के ऐसे कटोर हाथ को गन्यामी से हाथकर अर्थात् संन्यासी का हाथ
छोड़कर, मइसा मा, निग मुहाकर गन्याम करता हुआ बोला—“अरे !
श्रीमान् गौरसिंह, आप ! इस बेचारे गौर के अनुशित व्यवहार को
एक ककेश । यह मुनकर उमकः बैठ टोकने हुए गन्यामी के
का गौरसिंह से है —

दीवारिक ! मैंने तुम्हारा बड़े कर पहिना को है, मैं तुम्हें समझ गया,
तुम गौरप्रहमपहाय का ही नियुक्त किये गये हो । तुम्हारे बैठे लोग ही रहा
मैंने च तुम्हारे के रूप हीन है तथा हस्तोंक और बायोक दोनों में
सम्मान पड़े है । तुम्हारी प्रामाणिकता को ही पूरा शिवाजी जानने है
है, निग का मैं तुम्हें निग के को से बड़ीगा । बसलो, मागाव करी है
कोर कल का रहे है ।

तदवधार्य इव सलज्ज इव च नम्रोभूय, तस्य पृष्ठे हस्तं विन्यस्यन् संन्यासिरूपो गौरसिंहः समवोचत्—

आमलानामुत्तराय, नेदीयामेकस्या निम्नतर-मठ-वेदिकायां सद्-
ते मधुपदेश्य, सुमधुमेकन. गोप्याय, ग्याद्वरशिक्षावर्ण-वासाय-
मनं देवतो निम्नतराद्यामप्यलक्ष्य, पट-मण्डेन परमणोः
देवतो. कर्णयोर्ध्वोर्ध्वे नामायां देशान्तेषु च पुनितानिष
मधुन मोचय, मन्थयो. दृष्टे च सम्प्रमानान् मेषान् कुम्भितान्
च नादाय, मधुप-वाटिकाय वज्रीवमादाय, तिराम् पाड-
य, मन्थदुग्धीयं ध्वं मन्थयोर्निधाय, दीर्घादि-निर्देशानु-
सारं दीर्घयोगान्कृत्यामृतान्तरां प्रति प्राविष्टः ।

विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-

नेदीयाम् = मन्थद्विषयम् । अद्वरशिक्षा = वज्रीवमादाय ।
मन्थयो = मन्थद्विषयः । “मन्थयो” इति हिन् । पटमणो = मण्डपः । “पटमणो”
इति हिन् । “पटमणो” इति हिन् । चिपुषं = टोकां । इति हिन् । “चिपुषं”
इति हिन् । मधुप = मधुप, मधुपदिपदे । मोचय = दूरीकृत । “मोचय”
इति हिन् । मेषान् = वज्रीवमादाय, “मेषान्” इति हिन् । “मेषान्”
इति हिन् । पाडय = “पाडय” इति भाषायां ।

विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-
विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-
विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-
विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-
विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-
विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-
विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-
विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-
विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-
विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-

विशेषीयसु वर्याद्विषयसुम्भिन्यां सान्द्र-मुधासार-मंलि-

पूतान्—पूतने दुराचारान् मन्त्रछन्दानामुच्छन्दानामुच्छिन्ना-
मच्छिन्नानां म्लेच्छ-दन्तानाम्” इति कथयामास । तत्र प्रोक्त-
मेवमभूदन्त्याः ।

शिवगीत—अथ कथयतां तौ पूतान् ? का न स्यन्त-
आमन्महाप्रतापम परम्परायाः ?

गौरसिंहः—भगवन् सर्वं मुमिदम्, प्रतिगच्छन्त्यन्तगतमर्ह-
कृत-सनातनधर्म-रक्षा-महाप्रतापानां पारित-मुनि-वेषाणां योग्यता-
माश्रमाः सन्ति । प्रत्याभमञ्च पट्टीकेषु गोपयित्वा स्थापिता
परदशनाः स्वङ्गाः, पट्टलेषु निरोभायिताः शङ्खः, कुम्भपुष्प-
स्थापिता भुगुण्डयश्च समुल्लसन्ति । उच्छ्रम्य, शिन्ध्य, समिदन्

हिन्दी । अथतनश्चन्द्रो वैयाकरणोः परिभाषितो यस्मिन्नर्थे अनौठाप-
धोरन्धागामिररञ्चधर्चरमावयवरूपे—न तदभिप्रायेण प्रयोग इति
वेदितव्यम् । स्वच्छन्दानामित्यारभ्य म्लेच्छान्तेऽनुप्रासः । महाप्रतम् =
महान् नियमः । उच्छ्रः = पतितकणानामेवैकशो प्रदणम् । शिल्पम् =
सेवादो स्वामित्यक्तानां कणिष्ठानां प्रदणम् । “उच्छ्रः कणश्च आदानं कति

हो, नया कहने लायक और सुनने लायक समाचार आजकल निरंकुश,
उदण्ड, शील और सदाचारविधान दुष्ट म्लेच्छों के दुराचार के सिवा और
क्या है !” तदनन्तर उनकी बातचीत इस प्रकार हुई ।

शिवगीत—अच्छा बताइये हमारे महाप्रतापधर्मों का क्या हाल-चाल
है ! उनकी व्यवस्था कैसी चल रही है !

गौरसिंह—भगवन् ! सब ठीक हो गया है । प्रत्येक दो कोस के बीच
में सनातन धर्म की रक्षा का महाप्रत स्थापित किये हुए मुनिवेषधारी वीरों
के आश्रम हैं और प्रत्येक आश्रम में छप्परो की ओरियों में सैकड़ों त-
बारों, छप्परो में शक्तिशाली (शस्त्रविदोष) और कुशलों के ढेर में बन्दूकें
छिपा कर रखी हुई हैं । खेतों में गिरे अनाज के दानों और बाणियों की

रणम्, इहृदो-पर्यन्वेष्टगम्, भूजपत्र-परिमार्जनम्, पुष्पमाय-यनम्, तीर्थाटनम्, सप्तहम्य च ध्याजेन, केचन जटिलाः, परे मुण्डिनः, दूसरे कापायिनः, अन्ये मौनिनः, अपरे मद्यचारिणश्च बहुवः पटयो घटवधराः सञ्चरन्ति । विजयपुरादुद्दीयाशऽऽगच्छन्त्या मक्षिकाया अन्यन्तः स्थितं वषट् चिह्नः, किं नाम एष यवनहनकानाम् ?

शिष्योक्तम्—साधु साधु, वषट् न स्यादेवम् ? भारतवर्षीया यूयम्, तत्रापि महोष्कृतज्ञानाः, अग्नि चेद् भारतं वषट्, भवति च स्वाभाविक एषानुरागः सर्वभ्यापि स्वदेशे, पवित्रतमश्च यौष्माकीणः मनातनो धर्मः, समेतो जालमा समूलमुच्छिन्दन्ति, अस्ति च “प्राणा यान्तु, न च धर्म” इत्यार्याणां हृदं सिद्धान्तः । महान्तो

शास्त्रार्थं चिन्तित्वमरः । इहृदा = विश्वासः, पर्यन्वेष्टगम् = सर्वतो मार्गणम्, तस्य । जटिलाः = वृक्षमुखाः । “लोभादि-वामादि विच्छादिभ्यः ण्येभ्यः” । कापायिनः = गैरिकवसनाः । मक्षिकाया अपि, किमुत मनुष्याणाम्, केमुन्यमुता लोकोक्तिः । अन्तः स्थितम् = मानसे विद्यमानम् । जालमा = अविवेकिनः । “जाह्नोऽसमीक्षकारी स्वादि” त्वमरः ।

बेनने, समिधा छाने, इगुद (दिगोट या मायकांगनी के बीज) लोबने, भूजपत्र लोबने, फूल चुनने, तीर्थाटन करने तथा सतीग करने के बहाने, कोई क्या धारण किये, दूसरे तिर मुहाये, कुछ गेदभा वगैरे पहने, कुछ मौनी बने, और अन्य ब्रह्मचारी वेश धारण किये, अनेक चतुर गुमचर बालक पूम रहे हैं । हम बीजापुर से उठकर यहाँ आने वाली मसलौ तक की आन्तरिक बातों को जानते हैं, इन दुष्ट वक्त्रों की तो बात ही क्या है !

शिष्याभी—शाबाश, शाबाश, ऐसा कैसे न हो ! तुम लोग भारतीय हो, उसमें भी उध कुछ में उत्पन्न हुए हो, यह भारतवर्ष है, अपने देश पर सभी का स्वाभाविक प्रेम होता है, आपका सनातन धर्म पवित्रतम धर्म है, उसे ये जालिम बह से उखाड़ रहे हैं, और आपको का, ‘प्राणा मले ही चले जायें, पर धर्म न जाय’ यह हृदं सिद्धान्त है । महापुरुष

रघुवीर सिंह (राम सिंह) है और दूसरो के निवासो, द्विन्दु वे दोनों कथाओं को निराल अन्व निराल नहीं है ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार को सामाजिक उपन्यासकार को ओझा कम स्वतन्त्रता मिलती है । अनीत के अनुषंग ही उसे चरित्रों और घटनाओं का मधुपन करना पड़ता है । प्रधान चरित्र हमारे इतने निबट होते हैं कि उनका चित्रण करने समय लेखक को कल्पना के लिए बिल्कुल अवकाश नहीं रह पाता । उपन्यास की कथावस्तु बहुधुन होने के कारण कौतूहल तत्व पर भी आपात पहुँचना है । ऐतिहासिक तथ्यों का बहुत अधिक ध्यान रखने पर रचना ऐतिहासिक उपन्यास न रहकर औपन्यासिक इतिहास हो जाती है और ऐतिहासिक तथ्यों को अवहेलना लेखक का अज्ञान प्रकट करना है । इन्हीं कारणों से ऐतिहासिक उपन्यासकार अनेक प्रासंगिक कथाओं और काल्पनिक चरित्रों को मृष्टि कर लेते हैं । साहित्यकार का मत्व इतिहासकार के मत्व से भिन्न होता है । इतिहासकार वस्तुस्थिति देवता है और साहित्यकार सभावता ।

शिवराज-विजय के शिवाजी, भूपण, मात्यभोक्त, अकाल साँ (अनजल धान), शास्त्रा साँ (शास्त्रिधान), कुमार मुञ्जन्म (मायाविह), जय सिंह और यशवन्त सिंह ऐतिहासिक चरित्र हैं और रघुवीर सिंह (राम सिंह), सीवर्णी, पुरोहित देवगर्मा (वीर सिंह), ब्रह्मचारी गुरु, गौर सिंह, दाम सिंह, कूर सिंह, बदरद्दीन (बदरदीन), चाँद साँ (चान्दधान) आदि कल्पित ।

ऐतिहासिक चरित्रों के क्रिया-कलापों और आचरण-व्यवहार का चित्रण इतिहासकार को दृष्टि से किया गया है । ऐतिहासिक मायताओं का ध्यान रखने हुये ध्यान भी ने ऐसे स्थल बूँड निकाले हैं जहाँ उनकी प्रतिभा को गुप्त खेदने का अवसर मिल सके ।

औरंगजेब की दुहिना रोशनआरा (रसनारी) के स्थान पर इतिहास-कार बीजापुर की राजकुमारी का बन्दी बनाना लिखने है । नायक की

सर्वे च विजयपुराधोशमुद्रामवलोक्य, “किमेतन् ? कुत एतन् ? कथमेतन् ? कस्मादेतन् ?” इति जिज्ञासमाना मोत्कण्ठा धितस्थिरं । गौरसिंहस्तु शिवघोरेभ्यापि तस्मात्प्रचरित-शुभ्रयामयगत्य संक्षिप्य सर्वं वृत्तान्तमवोचन् । ततस्तु “ददृशिताम्, प्रसादनाम्, पश्यताम्, कथ्यताम्, किमिदमिति” पृच्छति शिवघोरे गौरसिंहो व्याजहार-भगवन् । सर्पाकारैर्ध्वजैः पारस्य-भाषाया लिखितं पत्रमेतदस्ति । एतस्य सारांशोऽयमस्ति—विजयपुराधोशः स्वप्रेषितमपजलम्नं सेनापतिं सम्बोध्य लिखति यन्—“वीरधर ! महाराष्ट्र-गजेन सह योद्धुं प्रस्थितोऽस्मीति मा स्म नूरकधनान्तरायमभव विजये । शिषं युद्धे जेष्यसि चेन्, पद्मपां सिंहं जिघ्रयानसीति मंस्ये, किन्तु

विजयपुरम् = ‘बंजापुर’ इति भाषायां प्रसिद्धं नगरम् । धितस्थिरं = स्थिरः । “ममवप्रविभ्यः स्व” इत्यात्मनेपदम् । शुभ्रयाम् = श्वेतमिच्छाम् ।

सर्पाकारैर्ध्वजैः । सोपशसम् । पारस्यानाम् = पारस-भाषायां, भाषायाम् = वाचि । “पारसा भाषा मे” इति हिन्दा ।

सभी लोग, बंजापुर के मुल्तान का मुहर देखकर ‘यह क्या है ? कहाँ से मिला ? कैसे मिला ? किससे मिला ?’ यह जानने की अत्यधिक उत्सुक हो उठे । गौरसिंह ने, शिवाजी को भा उसका प्राप्ति का वृत्तान्त जानने की उत्सुक जानकर संक्षेप में साथ वृत्तान्त कह सुनाया । तदनन्तर, वीर शिवाजी के ‘दिग्विहारे, लोलिये, पदिये, कहिये यह क्या है ?’ इस प्रकार पूछने पर गौरसिंह बोला—

भगवन् ! यह सर्पाकार अधरो (अरबा लिपि) से पारसी भाषा में लिखा गया पत्र है । इसका सारांश यह है, बंजापुर का मुल्तान, अपने हाथ भेजे गये सेनापति अफजल खान को सम्बोधित करके लिखता है कि “वीरधर ! तुमने महाराष्ट्र के अधिपति शिवाजी के साथ युद्ध करने का प्रस्थान किया है, अतः तुम्हारी विजय में किसी प्रकार का उपरिषद हा, यदि युद्ध में तुमने शिवाजी की बंद नि

सिंहद्वन्नापेक्षया जीवतः सिंहस्य वशीकार एवाधिकं प्रशम्यः । तद् यदि छलेन जीवन्तं शिवमानयेन्नद् वीरपुङ्गवोपाधि-दान-सह-कारेण तव महती पदवृद्धिं कुर्याम् । गोपीनाथपण्डितोऽपि मया तव निकटे प्रस्थापितोऽस्ति, स मम तात्पर्यं विशदीकृत्य तव निकटे कथयिष्यति । प्रयोजनवशेन शिवमपि साक्षात्करिष्यति” इति ।

इत्याकर्णयन् एव शिववीरस्य अरुणकौशेय-जाल-निबद्धी मीनाविव नयने मजाते, मुखञ्च बाल-भास्कर-चिम्ब-विडम्बता-माललम्बे, अधरश्च धीरताधुरामधरीकृतवान् ।

“शिव मुदे जेष्यसि चेत् पद्मया सिंहं जितवानसी”ति निदर्शनालङ्कारः । मंस्ये = ज्ञास्ये । प्रशस्य = श्लाघ्यः । प्रस्थापितः = प्रेषितः । विशदी-कृत्य = स्पष्टं कृत्य ।

अरुणम्=लोहितम्, यत् कौशेयस्य पट्टयस्त्रस्य, जालम्=आनाप, तेन निबद्धी=बद्धावली । मीनाविवेत्युपमा । कोधानयने लोहिते अभूताविति वाच्योऽर्थः । बालभास्कराय = नवोदितसूर्यस्य, यद्, चिम्बम् = नितान्त-लोहितमण्डलम्, तद्विडम्बनाम् = तदनुकृतिम् । माललम्बे = धृतवत् । धीरताधुराम् = पर्यभारम् । “अक् पूरम्” इत्यादिना समासान्तो-ऽप्रत्ययः । अधरीकृतवान् = त्यक्तवान् । अनुप्रासः । चूर्णकं गन्धम्,

समर्द्धता किं वैदल्य है शेर जीत शिवा; लेकिन शेर मारने की अपेक्षा जित शेर को बंध में करना है अधिक प्रशस्तनाय होता है, अतः यदि तुम छल में शिवराज को जयित है पकड़ छाओ तो तुम्हें वीरपुंगव की उपाधि देन के साथ है तुम्हारी पदवृद्धि भी कर दूंगा । मैंने गोपीनाथ पण्डित को भी तुम्हारे पास भेज दिया है, वे मेरे अभिप्राय को तुम्हें तब से समझावने और प्रशस्तनपत्र शिवराजों से भी मिलेगे ।”

यह सुनने ही शिवराज की आगि आल रेशमों जाल में फैलों मछली का तरह हो गई (जानों में जाल कोरे पक गए), मुखमण्डल नवोदित सूर्य के समान जल हो गया और भार पर्य छोड़कर पड़ने लगे ।

द्वितीयो निश्वासः

ने]

अथ स दक्षिण-कर-पद्मपेन इमं ध्रु परामृशन्नाकाशे दृष्टिं घट्ट्या
 भरे रे विजयपुर-कलङ्क । स्वयमेव जीवन् शिष्यः तव राज-
 गानोमायस्य, वोरपुत्रपौषाभिसद्वकारेण तव महती पदवृद्धिमद्भी-
 र्दृष्टिर्भवति, तस्मिन् प्रेरयसि मृत्योः क्रीडनकानेतान् कदम्ब्य-इत-
 कान् ?—इति सान्नेहमवाचन् । अष्टच्छब्दं “सायते वा कश्चिद्
 मृतान्तो गोपीनाथपण्डितस्य ?”

याचद् गौरसिंहं किमपि विषयं सायत्प्रतीकारः प्रविश्य
 ‘विजयतां महाराज’ इति त्रिर्योदन्य, करौ संपुटीकृत्य, शिरो
 नमयित्वा कथितवान् “भगवन् । दुर्गन्दारि कश्चन गोपीनाथनामा
 पण्डितः श्रीमन्तं दिदृक्षुरुपतिष्ठते । नायं समयः प्रभूणां दर्शनस्य,
 पुनरागम्यताम्” इति घट्टय कथ्यमानोऽपि “किञ्चनात्यायश्चक-

इत्या रीतिः, प्रसारश्च गुण इति तत्र तत्र न विस्मरणीयम् । शिष्य. =
 शिष्यावीत्यर्थः । पदवृद्धि = स्थानोन्नतिम्, ‘तरकी’ इति भाषायाम् ।
 मृत्योः = यमस्य । क्रीडनकान् = खेलासाधनानि । सन्निहितमरणानिति

उसके बाद शिष्याजी ने, दाहिने हाथ से मूँछों पर ताव देते हुए,
 आकाश की ओर दृष्टि कर, “अरे बीजापुर के कलङ्क । स्वयं शिष्याजी
 ही जीवित रहकर, दुम्हाते राजधानी पर आक्रमण करके, वोरपुत्रव
 उपाधि के साथ दुम्हाए ही हुई पदवृद्धि (तरकी) स्वीकार करेगा, मृत्यु
 के खिलनेने इन दुष्ट कायरों को क्यों भेजते हो ?” यह वाक्य कई बार
 दुम्हाया और गौरसिंह से पूछा, “क्या गोपीनाथ पण्डित का कोई समा-
 चार मिला ?”

गौरसिंह कुछ बदना ही चाहते थे कि इतने में ही द्वारपाल ने आकर,
 तीन बार ‘महाराज की जय हो’ कह कर, हाथ जोड़कर, सिर झुका कर
 कहा, महाराज ! किले के बाटक पर कोई गोपीनाथ नामक पण्डित
 आपके दर्शनों की इच्छा से खड़े हैं । ‘यह समय महाराज से मिलने का

कार्यम्” इति प्रतिजानाति । तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्—इति ।

तद्वगत्य “मोऽयं गोपीनाथः, मोऽयं गोपीनाथः” इति मन्त्रो
सतर्कं सोत्साहश्च व्याहृतशतानि निमित्तेषु, शिवचोरेण निजबान्धने
माल्यधोरुनामा संघोष्य कथितो यद् गम्यतां दुर्गान्तर एव महावंत-
मन्दिरे तस्मै वासस्थानं दीयताम्, भोक्तृ-पर्यट्कादि-मुमुक्षु-सामर्थ्य-
जातेन च सक्रियताम्, ततोऽहमापि साक्षात्करिष्यामि—इति ।

सतो षाट्मित्युक्त्वा प्रयाते माल्यधोरुः; “महाराज ! अज-
चेदहमशेष अपजलम्यानं कथमपि साक्षात्कृत्य, तस्याग्लिष्ठं व्यर्चसं
विज्ञाय प्रभुचरणेषु विनिवेदयामि । नाधुना मम श्रान्तिः शान्ति-
यतः संन्यासिवेषोऽहं समागच्छन् द्वयोर्वचनभटयोर्वार्तयाऽयागन्

यावत् । साक्षात्करिष्यामि = द्रक्ष्यामि । गोपीनाथमिति शेषः ।

वाटम्, अङ्गीकारसूचकमवयवम् । व्ययसितम् = उद्योगम् ।

नही है, पुनः आइयेगा,’ बार-बार कहने पर भी, कहते हैं कि ‘कुछ बड़-
जरूरी काम है ।’ प्रभुचरणों का वैसी आज्ञा हो वैसा ही किया जाय ।

यह जानकर, ‘यह वही गोपीनाथ है, यह वही गोपीनाथ है,’ इ-
प्रकार सभी लोगो के अनुमानपूर्वक और उत्साहपूर्वक बार-बार कहने
शिवजी ने अपने वचन के निज माल्यधोरु को सम्बोधित कर का-
‘आओ, दुर्ग के अन्दर ही महावंत-मन्दिर में उन्हें ठहराओ और मोक्ष,
पलग आदि सुखद सामग्रियों से उनका सत्कार करो, फिर मैं भी उनसे
मिलूँगा ।’

उसके बाद, माल्यधोरु के ‘अच्छी बात है’ कहकर चले जाने पर,
ने शिवजी के कान में धीरे से कहा, ‘महाराज ! यदि आनकी
आज्ञा हो, तो मैं आज ही किसी प्रकार अकलक खाँ से मिल कर, उसका
साथ इरादा जान कर आकर आप से निवेदन करूँ । अब मुझमें न तो
रुद्धिगुणता रह गई है, न शान्ति, क्योंकि संन्यासी के वेप में आते हुए इसे

यन् श्व एवेते युयुत्सन्ते" इति गौरसिद्धो मन्दं वर्णान्तिकं व्याहार्योन् ।

ततो "बोर ! कुशलोऽस्मि, सर्वं करिष्यसि, जाने त्वं चानुगीम्, तद् यथेष्टं गच्छ, नाहं व्याहृन्मि तवोत्माहम्, नीतिमार्गान वेत्सि, किन्तु परिपन्थिन एते अत्यन्तनिर्दयाः, अतिकृप्याः, अनिकृष्टनीतयश्च सन्ति । एतैः सह परम-साधधानतया व्यवहरणीयम्"— इति कथयित्वा शिष्ययोग्मन्तं विससर्ज ।

गौरसिद्धस्तु त्रिः प्रणम्य, ऊधाय, निवृत्त्य, निर्गत्य, अष्टमीयं, सर्पादि तम्या एव निम्य-नर-सल-वेदिषायाः समीप आगत्य, स्वमह-

हान्ति=हमा । वर्णान्तिकम् = भवणमर्मपन् । असर्वभार्यमिति यावत् ।

चानुगीम् = कीदृशम् । "गुणवचनवाक्यादिभ्यः" इति ध्वनि अलोपपक्षोपयोः; पित्वा-होपि । व्याहृन्मि = नाद्यवामि । परिपन्थिनः = यत्रयः । अत्यन्तं निर्दयाः = इत्यन्त्याः । अतिकृप्याः = परमनृपाः । "वदमे कृपणमुद्वे" इत्यस्य । अनिकृष्टनीतयः = कृपयसारसमुदायः । "माया निरुत्थयन्तेषु वैतसारुतगणिषु । अघोषने ऐक्यमुद्रं समाह्व कूटमस्त्रियामि" इत्यस्य ।

पारते मे ही मुसलमान सिराहिपो की हातचीठ से पता चलता कि वे कब ही सड़ना चाहते हैं ।

तरनन्ता, शिवाजी ने, "बोर ! तुम भादयन कुच्छ हो, मैं तुम्हारी चानुगी को जानता हूँ, तुम सब कर लीये, अतः भरना इच्छातुल्य करो, मैं तुम्हारा उत्साह नहीं मारना चाहता । तुम नीतिमार्गी को तो जानते हो, पर वे तुम को कृप, नय और करार दे, इनके साथ बड़ा साधधाना व्यवहार करिये ।" वह कह कर गौरीसिंह को विदा किया ।

गौरीसिंह ने तीन बार प्रणाम कर, उठ कर, घूम कर, बाहर निकल कर, अपने ऊपर कर, हाथ उसी नम्र क देह के नय चमूदरे पर नम्र

चरं कुमारमिङ्गितेनाऽऽहूय कस्मिंश्चिन् स्वसंकलित-भवने प्रविश्य
आत्मनः कुमारस्यापि च केशान् प्रसाधनिकया प्रसाध्य, मुखमाद्रे

शोण-पट्ट-निर्मितमधोवसनमाकलय्य, दिल्लीनिमिते महार्हे उपानदी
धारयन्वा, लघोयसी तानपूरिकामेकां सह नेतुं सहचर-हस्ते समर्प्य,
गुपच्छुम्बिकां दन्तावलदन्त-मुष्टिका यष्टिकां मुष्टौ गृहीत्वा, पटवा-

इङ्गितेन = सङ्कतेन । प्रसाधनिकया = कङ्कतिकया । “प्रसाधनो
कङ्कनिके” त्रयः । “कधी” इति हिन्दी । सौवर्णेन = सुवर्णविरचितेन,
कुम्भमलतादीनां चित्रेण, विचित्रिताम् = रंजिताम् । लघ्वणीय-
मुष्णीयिका, ताम् । “टोपां” इति हिन्दी । शोणपट्टनिर्मितम् = रक्तकौ-
टोविरचितम् । अधोवसनम् = अधोभागेण चरणेन धारणीयं वसनम् ।
“पायजामा” इति हिन्दी । दिल्लीशब्दो “दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं
नवान वय” इत्यादौ पण्डितराजेनापि व्यवहृतः । महार्हे—इत्यत्र ‘देरूरे’
हिन्दिनेन प्रयुज्यत्वान् प्रकृतिभावो बोध्यः । तानपूर एव तानपूरिका ।
“तानपूर” इति हिन्दी । सहोत्पस्य “आत्मने”ति शेषः । तानपूरिका-
शब्दस्य न महारन्देन विशेषविशेषणभाव एवेति न तत्र तृतीयाऽऽद्यांका ।
दन्तावलम्ब्य = वरिण दन्तः, मुष्टिका यस्यां ताम् । दन्तेन निर्मितेति
स समस्तानां समामो वा । “हाथी दाँत की मूँडवाली गुप्ती लड़की” इति

अन्य भाषा लड़के की हथौड़े से चुड़ाकर, किता पड़ते से निश्चित भवन
में प्रवेश कर अपने भीतर उस लड़के के बालों की कढ़ा से सँवार कर,
नई कढ़ाई से पोँछ कर, माथे पर सिन्दूर का तिलक लगा कर,
गले में माला कर, मुँह में मिठाई मोंने के काम वाली गुप्तीलतादि चित्रित
कर चुड़ाकर, इस रीतिसे अंगरक्षा, लाज करके का पायजामा, दिल्ली के
जने पहुँचकर दूरी पड़न कर, छोटे छे एक तानपूरे की साथ ले जाने के
उपराय भाषा लड़के के हाथ में देकर जिसमें सुधी गुप्त या ऐसा हाथी के

शिवराज विजय

हिमोचो निभासः

नुरचन्, वरस्यपटखण्डेन च मुहुर्मुहुराननं प्रोञ्जन्
अपञ्जलान-शिबिराभिमुखं प्रवस्ये
ती त्वरितं गच्छन्ती, सपद्य परशव-श्वेतपट-कुटीरेः
य-मण्डलायितं दीपमाळा-विहित-यदुल-याकपस्थम्
ान-शिबिरं दूरं एव पश्यन्ती, यावत्समीपमागच्छ-
कभन कोकनद-च्छावि-वस्त्र-खण्ड-वेष्टित-मूर्धा, कटिपर्यन्त-
नकश्यामाङ्गराक्षक, कर्पुराधोवसनः, शोभ-इमधुः, विजय-
न-नामादित-वर्जुल-वितल-पटिका-वरिकटित-याम-वक्ष-

पटवार्मः = मुगन्धितद्रव्यैः । "रघु" इति हिन्दी । दन्तुरचन् =
चन्, मुगन्धयन्निति तात्पर्यम् । वरस्यपटखण्डेन = वरस्यपाट-
ख्या । "राष्ट्री रमाळ" इति हिन्दी ।
शाखदमेपमण्डलायितम् = शाखमयमेपमण्डलमिवाऽऽचरितम् । कु-
वापुषतवाच सादरचम् । कोकनदच्छाविना = रक्तकमलकान्तिना,
खण्डेन = वेष्टितो मूर्धा यस्य सः । कटिपर्यन्ता मुनडा काकश्यामा =
तिर्यामळा, अङ्गपटिका यस्य सः । कर्पूरम् = अनेकवर्णान्,
मधोवसनं यस्य सः । शोभ-इमधुः = रक्तमूलवेद्यः । विजय-
पुराधीशनाम्नाऽर्जुनया = वनप्रामवेदेन विहितया, वर्जुलया = गोलाकारया,

रात की मूठ वाली गुत्ती छड़ी हाथ में लेकर, रघु की मुगन्ध से दिशाओं
की मुगन्धित करते हुए, हाथ में लिये रमाळ से बार-बार मूर्त पीछते हुए,
गायक के वेश में, अपञ्जल खाँ के शिविर की ओर प्रस्थान किया ।
उदनन्तर, बल्ली-बल्ली कदम पड़ा रहे वे दोनों, सेकड़ी श्वेत खेमों
। घाट कतु के मेपमण्डल के समान लगने वाले, दीपमालिकाओं से
बगमगा रहे, अपञ्जल खाँ के शिविर की दूर से ही देखते हुए, रात की
सिर पर छपेटे, कमर तक लम्बी क्रीय के रंग के समान काला अंगरखा
परने, चितकरी दुर्ली परने, लाल मूँठ दाढ़ी वाले, बीजापुर के

स्थलः स्कन्धे भुशुण्डी निधाय, इतस्ततो गतागतं कुर्वन् सावष्टम्भमुः
भापया उवाच—‘कोऽयंकोऽयम् ?’ इति; ततो गौरसिंहेनापि ‘गा
कोऽहं श्रीमन्तं दिदृक्षे’ इति समार्दवं व्याख्यायि । ततो ‘गम्यतामन्ये-
ऽपि गायका वादकाश्च सम्प्रत्येव गताः सन्ति’ इति कथयति प्रहरिणि,
‘धृतेन स्नातु भवद्रसना’ इति व्याहरन् शिविर-मण्डलं प्रविवेच ।

तत्र च कचित् स्वद्यामु पर्यङ्क्षे चोपविष्टान्, सगदगदाशब्दं
ताम्रक-धूममाकुष्य, मुखात् कालसर्पानिव श्यामल-निश्वासानु
दगिरतः, स्वहृदय-कालिमानमिव प्रकटयतः, स्वपूर्वपुरुषोपाजिक्-

पित्तलपट्टिका = धातुकलकिका, लोके “चपरस” इति स्नात
परिकलितम् = भूषितम्, धामं वक्षःस्थलं यस्य सः । सावष्टम्भम्
सप्रतिरोधम् । समार्दवम् = सकोमलवत् । व्याख्यायि = कथितम् । धृते-
स्नातु भवद्रसनेति, “आपके मुँह में पी चीनी” इत्यर्थकलोकप्रवादक
नम् । अतएव लोकोक्तिरलंकारः ।

तत्र चेत्यारम्भ प्रधानपटकुटीरद्वारमाससादेत्येकान्वयि । ताम्रकम् =
“तमालू” इति हिन्दी । ताम्रकधूमनिश्वासस्य स्वत एव श्यामलस्य मुखात्-
द्रमितस्य कालसर्पत्वेनोत्प्रेक्षा । यथैन्द्रजालिका बनान्मोहयितुमाननात् कुण्डल-
सर्पानुदमन्ति तथैवैते शिवराजमोहनाय स्थिता इत्युपमालंकारस्य व्यञ्जयत्वेन

के नाम से अङ्कित गोल पीतल की चपरस छाती की चारों ओर डाले, जब
पर चन्द्रक रत्नकर इधर उधर गदगद लगा रहे किमी आदमी ने उन्हें देख
कर, उई भाषा में कहा, ‘कोन है, यह कोन ?’ गौरसिंह ने नम्रता से कहा,
मैं गायक हूँ, दुःख से मिटना चाहता हूँ ।’ तब प्रहरी के ‘जाओ और
पी गाने और बजाने वाले अभी-अभी गये हैं’ यह कहने पर, ‘आपके मुँह
में पा-शकर’ कहता हुआ गौरसिंह शिविर में प्रविष्ट हो गया ।

वहाँ, वहाँ लाटों और पलंगों पर बैठे हुए गदगद शब्द के साथ
आकुषा पुर्भा नीच कर दूर से काले सनों के समान पुर्भा निष्कास रहे,
जनों अपने हृदय की कालिमा को प्रकट कर रहे, मानो अपने पूर्वजों का

द्वितीयो निश्वास

कानिच पूरकारिगमिनान् पुचंन, मणोसरमविदुलंभे नुखा-
 वीन जीपन-दशायायेवाऽऽकलयत, प्राप्ताधिकारकलितारवे-
 ; कश्चिद् "हरिद्रा हरिद्रा, लघुनं लघुनम्, मरिचं मरि-
 , पुकं पुषम्, विनुमकं विनुमवम्, शृङ्गवेरं शृङ्गवेरम्, रामठं
 टम्, मन्मण्डो मन्मण्डो, मत्स्या मत्स्या, कुक्कुटाण्डं कुक्कु-
 णम्, पल्लं पल्लम्" इति कलकनेषांलानां निद्रा विद्रावयत,

स्वरद्वाराकनिः । अन्ययोर्विधेते स्वहृदयस्य कालिमानमिव । पुनरपु-
 विधेते स्वपूषं पुषं = मन्मण्डं मन्मण्डं, उपाजितान् = संचितान्, पुष्पलो-
 फान = स्वगांदिवान् । अमिसान् = वक्रपपीनीनूतान् । ददत इति भावः ।
 तावत्पूनाकर्षणमसिक्तकायवेनोर्विधेते-मरणादुत्तरम्-देहत्यागानन्तरम् ।
 प्राप्तेन-अख्येन, अधिकारेण = स्वाम्येन, अरयं = बहुलंभूतः, गर्वः =
 हरिद्रा परधमिनी"त्वमगः । मन्मणे द्विक्रिः । चुक्रम् = शृङ्गाम् । विनु-
 "पल्लिहोदय चुक्रम् शृङ्गाम्"त्वमगः । "चूक" इति हिन्दी । विनु-
 म् = उषा । "अपच्छा विदुलकनि"त्वमगः । "सोफ" इति हिन्दी ।
 त्वेवम् = आट्रंम् । "आट्रं मृगवेरं म्वादि"त्वमगः । "आद" इति
 ली । रामटम् = रिड । मत्स्यण्डो = पानितम् । "एक" इति
 ली । कुक्कुट्या अण्डं कुक्कुटाण्डम् । "कुक्कुट्यादीनामण्डादिभि" ति

उपाश्रित स्वगादि पुष्प-सोफी को पूँक मार कर बला रहे, मरने के बाद
 (मुक्तमानों के मुदों का बलाना उनके धर्म से निर्दिष्ट होने के कारण) न
 प्राप्त हो सकने वाले अग्निसंयोग को वीक्षित दशा में ही प्राप्त कर ले रहे,
 अधिकार सम्पन्न होने से पमण्ड ने चूर हो रहे, यवनपुवकी; और कही
 'रत्ना रत्नी, लरमुन-लरमुन, मरिच-मरिच, खयई-खयई, सोफ-सोफ,
 अदरल-अदरल, होग-होग, एव-एव, मछलियाँ-मछलियाँ, मुगाँ का अण्डा-
 मुगाँ का अण्डा, मास-मास' के कोटारल से बच्चों की नींद हराम कर रहे,

